

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180873

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82/U66J Accession No. G H 284

Author उपेन्द्रनाथ 'अहक' ।

Title जय-पराजय । १९५०

This book should be returned on or before the date
last marked below.

जय-पराजय

नाटककार
उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

नीलाभ प्रकाशन गृह
प्रयाग

सर्वाधिकार लेखक के पास सुरक्षित हैं ।

चतुर्थ संस्करण १९५०
मूल्य एंटिक ३।।)
साधारण २।।।)

नीलाभ प्रकाशन गृह ५ खुसरोबाग रोड, इलाहाबाद
से प्रकाशित
सेवा प्रेस, ९८ द्विवेट रोड इलाहाबाद
से मुद्रित

दो शब्द

पहला संस्करण

पिछले दो तीन वर्षों में, मुझे जिन कठिन परिस्थितियों से गुज़रना पड़ा, जिन अनदेखी विपत्तियों से जूझना पड़ा और जीवन के इस संघर्ष में मैंने जो कठोर आघात सहे, उन्होंने मुझे एक प्रकार से अशक्त ही कर दिया था, हरा ही दिया था। नया वर्ष बहुतों के लिए भव-संदेश लाता है, बहुतों के अंधेरे दिलों में नूतन आशाओं की ज्योति भर देता है, किन्तु आज से कुछ मास पूर्व १९३७ के एक सिर पर खड़े होकर जब मैंने सामने की ओर नजर डाली थी तो मुझे गहरी निराशा और असीम सूनेपन के अतिरिक्त कुछ दिखायी न दिया था। उस समय मेरा मन एक विचित्र उदासीनता से भर गया था। जी चाहता था—बैठा रहूँ, बस सारा सारा दिन नीरव, चुप चाप बैठा रहूँ, किन्तु जीवन-युद्ध में जय-पराजय का चक्कर तो चलता ही रहता है, विजयी होकर अपने भाग्य को सराहना और पराजित हो, घुटनों में सिर रख कर बैठ जाना तो दुर्बलता है। निरन्तर चलना, निरन्तर लड़ते रहना ही तो जीवन है।

यही सोच कर उठा, चाहा कि इस उदासीनता को भटक दूँ। ऐसा न कर सका तो फिर इसे किसी दूसरी ओर लगाने का ही निश्चय किया। 'जय पराजय' मेरे उसी प्रयास का फल है।

नाटक मुख्यतः खेलने की चीज़ है। इसे लिखते समय नाटककार के लिए रंग-मंच की आवश्यकताओं का ध्यान रखना नितांत

आवश्यक है। मुझे रंग-मंच का यथेष्ट अनुभव है, स्टेज का भी मैंने यथेष्ट ध्यान रखा है और यह नाटक, यदि कोई खेलना चाहे तो सफलतापूर्वक, कुछ परिवर्तनों के साथ, खेला भी जा सकता है। तब प्रश्न उठता है कि मैंने इस में कुछ परिवर्तनों की गुंजाइश ही क्यों रखी? इसे पूर्ण-रूप से रंग-मंच पर खेला जाने वाला नाटक क्यों नहीं बनाया? इस सम्बन्ध में दो बातें मैं निवेदन करना चाहता हूँ।

दुर्भाग्य-वश हमारे देश में स्टेज नाम की चीज अब नहीं रही। सिनेमा ने पूर्ण-रूप से स्टेज को पीछे फेंक दिया है। दूसरे देशों में भी सिनेमा का आधिपत्य है पर वहां रंग-मंच को भी उपयुक्त स्थान मिला हुआ है। वहाँ नाटक कम्पनियाँ छोटे छोटे नाटक खेलती हैं जो सिनेमा की भाँति अधिक से अधिक दो घंटों में समाप्त हो जाते हैं। 'शा' और 'इब्सन' के नाटक अपने देश के रंग-मंच की आवश्यकताओं को सामने रख कर ही लिखे गये हैं। उन में तीन अथवा चार बड़े-बड़े दृश्य होते हैं। उन्हें ही अंक कह दिया जाता है। वहां एकाङ्को और एक दृश्य के नाटकों का रिवाज है। और वहाँ स्टेज की सुविधा के अनुसार अथवा उसकी जरूरतों को सामने रखते हुए नाटककार नाटक लिखते हैं। हमारे देश में ऐसा करना असम्भव सा ही है। नाटककार नाटक लिख देता है और यदि कोई खेलना चाहे तो अपनी आवश्यकतानुसार उस में परिवर्तन कर लेता है।

दूसरे, क्योंकि देश में नाटक को खेलने अथवा देखने वाले कम हैं, इसलिए नाटक-कार रंग-मंच की आवश्यकताओं से, पढ़ने वालों की जरूरतों को अधिक ध्यान में रखता है। इस नाटक में भी पाठकों की

मुविधा का मैंने अधिक ध्यान रखा है। नाटक की आरम्भिक घटना (Initial incident) दूसरे अंक के पहले दृश्य से शुरू होती है, किन्तु पहला अंक पाठकों की मुविधा का ध्यान रख कर ही लिखा गया है। इस में उस काल की चन्द विशेषताओं का उल्लेख करना मैंने आवश्यक समझा है।

नाटक ऐतिहासिक है। इसकी कहानी 'टाड राजस्थान' में एक डेढ़ पृष्ठ पर लिखी हुई मिल सकती है। मैंने मुख्यतया उस कहानी को लिया है। मुख्य पात्र भी वहीं से लिये हैं। केवल एक परिवर्तन किया है। टाड साहब ने रणमल को राणा लक्ष्मि सिंह का ससुर बताया है। किन्तु राय बहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'उदयपुर का इतिहास' में उसे राणा का साला लिखा है और श्वसुर का नाम रावत चूड़ावत लिखा है। मुझे सारी कहानी को पढ़ने के बाद यह बात ठीक लगी। इसलिए मैंने इस बात को अपना लिया। और भी कई बातों के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। मैंने उन बातों को नहीं छेड़ा, केवल मुख्य और प्रचलित कहानी की ओर ही ध्यान रखा है।

लाहौर

अगस्त १९३७

चतुर्थ-संस्करण

जय-पराजय का दूसरा संस्करण एक ही वर्ष बाद हुआ, जब इसे पंजाब विश्वविद्यालय की भूषण परीक्षा के लिए स्वीकार किया गया। तीसरा संस्करण १९३९ में हुआ, जब पुस्तक राजपूताना बोर्ड के मैट्रिक के लिए स्वीकृत हुई। इसके बाद मैं लाहौर से चला गया और प्रीत-नगर तथा दिल्ली से होता हुआ बम्बई जा पहुँचा और अपनी पुस्तकों की ओर

ध्यान न दे सका । हिन्दी के साधारण प्रकाशकों में इतनी ईमानदारी अभी नहीं आयी कि वे लेखक को उसकी रचना के प्रकाशन की गतिविधि से सूचित रखें । जो भी हो, सात एक वर्ष से यह नाटक मार्केट में दिखायी नहीं दिया । टेक्स्टबुक-प्रकाशकों के गोदाम में सब्ता रहा हो तो कह नहीं सकता । अब जब नीलाभ प्रकाशन का आयोजन हुआ तो “देवताओं की छाया में”, “छूटा बेटा” और “स्वर्ग की भूलक” की भाँति इसे भी गुमनामी के गर्त से निकाला ।

इस बीच में नाटक कई जगह खेला गया है और आलोचकों की प्रशंसा का भाजन बना है । नाटक के पात्र ‘भारमली’ के सम्बन्ध में तो श्री नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक ‘आधुनिक हिन्दी नाटक’ में लिखा :

“...और भारमली ! वह तो ‘देव सेना’ और ‘मालविका’ के गौरव की अधिकारिणी है । भारमली इस युग की अमर सृष्टि है ।”

आज जब मैं नाटक को पढ़ता हूँ तो अनायास जी चाहता है कि इसे एक सिरे से दूसरे सिरे तक बदल डालूँ, पर फिर सोचता हूँ तो पाता हूँ कि यदि उम्र और समय की कमी न हो तो जागरूक लेखक अपनी कौन कौन सी रचना बदल देना न चाहेगा । स्वास्थ्य इधर वर्षों से साथ नहीं दे रहा, इसलिए एक नजर देख कर बिना कोई बड़ा परिवर्तन किये, नाटक का यह चौथा संस्करण पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करता हूँ ।

इलाहाबाद
नवम्बर १९५०

उपेन्द्रनाथ ‘अश्व’

नाटक के पात्र

पुरुष

राणा लक्ष्मिंह	मेवाड़ के राणा
चंड	(चूँडा) मेवाड़ के युवराज
राघवदेव	राणा लक्ष्मिंह के दूसरे पुत्र
भोटिंग भट्ट	मेवाड़ के प्रख्यात पण्डित
	कीर्तिमान केशव
धनेश्वर राय	मेवाड़ के पुरोहित
हरिसिंह	कुमार राघवदेव का एक सेवक
रावल चूड़ावत	मंडोवर के अधिपति
रणमल	उनका निर्वासित ज्येष्ठ पुत्र
काह्ला	रानी तारा से उनका दूसरा पुत्र
बाघसिंह	रणमल का साथी, एक राठौर सरदार
अजित	रणमल का एक सेना-नायक
प्रधान मन्त्री, कोषाध्यक्ष, नागरिक, सेवक आदि	

स्त्री

रानी	राणा लक्ष्मिंह की बड़ी रानी
हंसा बाई	मंडोवर की राजकुमारी, राणा लक्ष्मिंह की दूसरी रानी
हेमवती	राणा लक्ष्मिंह की बड़ी लड़की

मुकेशी	राणा लक्ष्मि सिंह की छोटी लड़की
कुसुम	रावल चूड़ावत की बड़ी रानी
तारा	रावल चूड़ावत की दूसरी रानी
मालती	हंसा बाई की सहेली
भारमली	मेवाड़ की प्रसिद्ध नायिका
रेवा	रानी कुसुम की दासी
मेवाड़ की धाय, दासियाँ, सहेलियाँ इत्यादि	

स्थान

चित्तौड़ गढ़	मेवाड़ की राजधानी
खेलवाड़ा	कुमार राघव की जागीर
मंडोवर	एक स्वतन्त्र राज्य
माँडू	एक स्वतन्त्र मुसलमान राज्य

क्षेमडोवर को मन्डोर तथा मन्डूर भी कहा जाता है ।

जय-पराजय

प्रथम अंक

१

मवाङ्ग क इष्ट-देव एकलिंग जी के मन्दिर का एक भू-गृह जिसमें

भगवान लकुटीश❀ की मूर्ति स्थापित है ।

मठाधीश, ब्राह्मण और सेवक मार्ग में दिये जलाते, मूर्ति की

उपासना को आ रहे हैं ।

भू-गृह में अँधेरा है और अन्दर से उनके गाने की हलकी-सी ध्वनि

सुनायी दे रही है जो प्रतिक्षण समीप होती जा रही है ।

गाने की ध्वनि—

हे शिव, हे शंकर, हे ईश

जय जय, जय जय, जय लकुटीश❀

लकुट दंड है तेरे साथ

विजय - पराजय तेरे हाथ

हम सेवक हैं तेरे नाथ

हम पर कृपा करो जगदीश

जय जय, जय जय, जयलकुटीश

❀‘लकुटीश’ अथवा ‘लकुलीश’ शिव के १८ अवतारों में से एक माना जाता है । प्राचीन काल में शैव सम्प्रदायों में लकुटीश सम्प्रदाय बहुत प्रसिद्ध था और समस्त राजपूताना, गुजरात, मालवा, बंगाल, दक्षिणादि में भगवान लकुटीश की उपासना होती थी । लकुटीश की मूर्ति द्विभुज होती है । उसके बायें हाथ में लकुट (दण्ड) रहता है और दायें हाथ में

एक सेवक—मशाल ऊपर करो, मशाल ऊपर करो ! !

दूसरा सेवक—हम पहुँच रहे हैं, हम पहुँच रहे हैं !

तीसरा सेवक—सुनो, सुनो, ऊपर भगवान एकलिंग की स्तुति में गाये जाने वाले गीतों की ध्वनि दूर होते होते श्रवण-शक्ति की सीमा से परे चली गयी है.....

चौथा सेवक—और नीरवता हमारी साथिनी है, जिसे अंध-कार और शीत ने निस्तब्ध बना दिया है ।

मठाधीश—बढ़े चलो, बढ़े चलो और दिये जलाते जाओ !

एक ब्राह्मण—इधर भी, उधर भी, सब ओर दिये जलाओ !
आज विजय का दिन है, उल्लास का दिन है ।

दूसरा ब्राह्मण—चिर-काल से प्यासे इन मार्गों की प्यास बुझा दो !

सब सेवक—हम इन्हें प्रकाश में नहला देंगे ।

मठाधीश—इन झरोखों में भी दिये जलाओ, इन झरोखों में भी, ऐं ! इधर, इधर !

भू-गृह के झरोखों में दिये रखे जाते हैं, अन्दर क्षीण-सा प्रकाश फैल जाता है, जिसमें भू-गृह में आने वाला द्वार, एक खिड़की

और भगवान् लकुटीश की विशाल-मूर्ति

दिखाई देती है ।

एक सेवक—(खिड़की में दिये रखते हुए) हम पहुँच गये, हम बीजोरा नामक फल होता है । मूर्ति के सिर पर जैन मूर्ति के समान केश होते हैं और यह मूर्ति पद्मासन बैठी हुई होती है । (राजपूताने का इतिहास)

मन्दिर के पिछली ओर हैं !

मठाधीश—उधर से चलो, देर हो रही है ।

सेवक दिये रख कर चलना है, उसके पीछे दियों का था...

एक दूसरा सेवक और फिर अन्य धीरे-धीरे गुजरते हैं ।

पहला सेवक—किधर से जाएँ महाराज ! आगे का मार्ग कौन सा है ?

मठाधीश—(रुक कर) उधर से, दायें हाथ को मुड़ कर ।

पहला सेवक—इधर अंधकार है महाराज, सूचीभेद्य अंधकार है ।

एक ब्राह्मण—भगवान लकुटीश हमारी रक्षा करें !
भगवान.....

पहला सेवक—हाथ को हाथ नहीं सूझता महाराज !

दूसरा सेवक—लगता है जैसे अंधकार ने अपना मुँह खोल दिया है और हम उसके कंठ में उतरे चले जा रहे हैं ।

वही ब्राह्मण—भगवान लकुटीश हमारी रक्षा करें, भगवान लकु.....

मठाधीश—गाओ, गाओ, भगवान लकुटीश की जय के गान गाओ ! रुकावटों का अंधकार दूर हो जायगा और सफलता का उजियाला हमारे पाँव चूमेगा !

सब वही गाना गाते हुए धीरे-धीरे गुजरते हैं और शनैः शनैः

मशालों का प्रकाश द्वार के रास्ते भूयः में फैल जाता है ।

दो सेवक प्रवेश करते हैं ।

एक—भगवान लकुटीश की जय, भगवान लकुटीश की जय ।

दूसरा—हम पहुँच गये; हम भगवान की मूर्ति के सामने हैं; हम भगवान को शीश नवा रहे हैं ।

नत-मस्तक होते हैं ।

धीरे-धीरे दूसरे भी प्रवेश करते हैं ।

मठाधीश—(अन्दर से) आलाकित कर दो ! भगवान लकुटीश के निवासस्थान का कोना कोना आलोकित कर दो ! !

ब्राह्मणों के साथ प्रवेश करता है, सेवक दिये जलाते हैं । मठाधीश थाल में से दिये लेकर मूर्ति के चरणों में रखता है ।

—(हाथ जोड़ कर) भगवान लकुटीश, एकलिंग के अवतार, विजय कं देवता, मेवाड़ के रक्षक, उसकी भूमि को उर्वरा बनाने वाले, उसकी नदियों में वेग, उसके सरोवरों में अनन्त जलराशि, उसके पहाड़ों में सप्त-धातु, उसके वृक्षों में फल, उसकी लताओं में फूल देने वाले, उसकी प्रजा को धनधान्य से सम्पन्न करने वाले ! तुझे बारम्बार नमस्कार है !!

सिर झुकाता है ।

—भगवान ! आज तेरी कृपा से मेवाड़ का भाल एक बार फिर उन्नत हुआ है । मेवाड़ ने मेदों* को परास्त करके वर्धन X पर विजय-पताका फहरायी है । राणा लक्ष्मि सिंह का रण-घोष, जिसने शत्रुओं का धैर्य विध्वंस कर दिया, अब भी युद्ध-

* मेद (जाति) । X बदनौर ।

भूमि में गूँज रहा है और कुमारों के रण-कौशल की धाक देश भर में बैठ गयी है। आज उग्र तेज वाले महाराणा, विजयी होकर, वीर शिरोमणि युवराज चंड ❀ और कुमार राघवदेव के साथ राजधानी लौटे हैं। प्रार्थना है भगवान, तेरी कृपा मेवाड़ पर इसी प्रकार बनी रहे। उसके महाराणा सदैव विजयी हों और शत्रु पराजय का मुँह देखें।

पुनः नत-मस्तक होता है।

(सेवकों से) ले आओ, ले आओ, दियों का थाल ले आओ !
भगवान लकुटीश की आरती उतारें।

सब आरती उतारते और गाते हैं।

जय लकुटीश

जय जय, जय जय, जय लकुटीश

हे शिव, हे शंकर, हे ईश

जय लकुटीश

जय जय, जय जय, जय लकुटीश

लकुट दंड है तेरे साथ

विजय, पराजय तेरे हाथ

हम सेवक हैं तेरे नाथ

हम पर कृपा करो जगदीश

जय जय, जय जय, जय लकुटीश

पट-परिवर्तन

एक उपवन

विजय के उपलब्ध में खुशियाँ मनायी जा रही हैं,
दो कुंजों के मध्य रंगशाला बनी है; भीड़ इकट्ठी
हो रही है ।

दो नागरिक प्रवेश करते हैं ।

एक—(भीड़ की ओर देख कर) आज वर्धन की विजय के
उल्लास में चित्तौड़ की गलियों में, बाजारों में, बागों और वाटि-
काओं में आह्लाद का नृत्य हो रहा है । गायक और नर्तक अपने-
अपने स्थान पर अपनी कला का चमत्कार दिखा रहे हैं, पर
दर्शकों के लिए, श्रोताओं के लिए एक ही स्थान पर जमना ठीक
नहीं, उन्हें तो चल फिर कर रसास्वादन करना चाहिए (साथी से)
यह देखो, यहाँ अभी से कितनी भीड़ जमा हो गयी है । भारमली
यहीं तो गायेगी । चलो चलो, शीघ्र चल कर अच्छी जगह प्राप्त
कर लें !

आगे बढ़कर जगह बनाते हुए बैठ जाते हैं ।

दो और नागरिक प्रवेश करते हैं ।

एक—अरे भारमली यहीं गायेगी, चलो, अब यहीं बैठें ।

बढ़ कर बैठते हैं ।

एक आवाज़ (क्षेप्य में) कुमार राघवदेव की जय ।

दूसरी आवाज (नेपथ्य में) मार्ग छोड़ दो, मार्ग छोड़ दो !

भीड़ में 'कुमार आगये', 'कुमार आगये' का शोर ।

सब उठ कर खड़े हो जाते हैं । रंगशाला का

संयोजक आगे बढ़ता है ।

रणमल, बावसिंह, पदाधिकारियों तथा अन्य सैनिकों

के साथ कुमार राघव का प्रवेश ।

संयोजक—आइए, पधारिए ! इस स्थान को अपने चरण-कमलों से पवित्र कीजिए !

कुमार—मुझे ठहरना नहीं, मुझे जाना है, नगर के अन्य स्थानों का निरीक्षण करना है । मंत्रि-मंडल की बैठक में शामिल होना है ।

एक अधिकारी—प्रातः से संध्या तक चलते-चलते, दोनों हाथों से निर्धनों, दीन-दुखियों, विपन्नों को दान देते-देते कुमार, आप थक गये होंगे, अब ठहरिए, सुस्ता लीजिए !

भारमली मंच पर आती है, रणमल उसकी ओर

टकटकी लगा कर देखता है ।

दूसरा अधिकारी - हाँ, हाँ कुमार अब आप विश्राम कीजिए ।

कुमार—जीवन में विश्राम कहाँ सामन्त जी, ठहरना, सुस्ताना कहाँ ? निरन्तर, अथक चलते रहना ही तो जीवन है, ठहरना तो मृत्यु है, ठहरना तो.....

भारमली की ओर कुछ क्षण देखते हैं, फिर आँखें नीची कर

लेते हैं. मुख पर लाली दौड़ जाती है ।

संयोजक—और नहीं तो हमारे लिए ही, हमारे उल्लास को अपनी उपस्थिति से बढ़ाने के लिए ही आप ठहरें। नगरी * की प्रख्यात गायिका समस्त भारत में अपनी कला का डंका बजाती हुई अभी कुछ दिन पहले अपने देश को लौटी है। विजय-दिवस के उपलक्ष में, चित्तौड़-वासियों के मनोरंजनार्थ, उसके संगीत का आयोजन किया गया है।

कुमार एक बार फिर भारमली की ओर देखते हैं। फिर

रणमल की ओर, और मुस्कराते हैं।

कुमार—मेरा विचार है कि मंडोवर-कुमार कुछ क्षण बैठना चाहते हैं। अच्छा, तो मैं भी कुछ देर के लिए बैठूँगा, परन्तु मुझे जाना है, मन्त्रि-मंडल की बैठक आरम्भ हो गयी होगी। वे लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

एक कुंज में कुमार के बैठने का प्रबन्ध किया जाता है। सितार,

तम्बूरे और दूसरे साजों की मधुर ध्वनि मंच पर गूँज उठती

है और भारमली गाती है।

मानस के परदों पर छाओ,

बिंध जाओ उर के तारों में !

आँसू बन कर ही आ जाओ,

नयनों के कारागारों में !

रस बन, मलयानिल के रथ पर,

आ जाओ, ओ मेरे मानी !

मेरे जीवन का सूनापन,
 हो मुखरित कह नयी कहानी
 सब तन्मय होकर सुनते हैं। रणमल अनिमेष दृगो से
 भारमली को देखता है। वह कुमार को
 देखती हुई गाती है—

विस्मृति में स्मृतियों का रव हो,
 जाग पड़ें सब सोये सपने।
 फिर अतीत के वैभव को मैं,
 पा ही लूँ अन्तर में अपने !

‘धन्य है’, ‘धन्य है’ की ध्वनि।

कुमार उठते हैं, गले का हार उतार कर सामन्त को देते हैं।

सामन्त—(हार भारमली की ओर बढ़ाते हुए ऊँची आवाज़ से)
 कुमार अतिप्रसन्न हुए। भारमली और जो चाहती हैं, निःसंकोच
 कहें। जितने धन की आवश्यकता हो बतायें।

संयोजक भारमली से पूछता है, भारमली हार लेकर कुमार को
 प्रणाम करती है।

संयोजक—वह धन नहीं चाहतीं।

सामन्त—तो ?

संयोजक—वे भ्रमण करके थक गयी हैं। वे कुछ देर के लिए
 विश्राम चाहती हैं, यदि कुमार कृपा करके महलों में ही.....

कुमार—मैं समझ गया, मैं माता जी से कहूँगा। (सामन्त से)

चलिए देर हो रही है, हमारी प्रतीक्षा होती होगी । (रणमल से)
और आप तो अभी बैठेंगे ही, हाँ-हाँ, बैठिए । मैं केवल सामन्त
जी और सेवकों के साथ जाता हूँ । (एक सैनिक से) मंडोवर-
कुमार की सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखना !

बिना किसी ओर देखे चले जाते हैं, भारमली उनकी ओर
देखती रहती है और फिर जाने लगती है ।

श्रोताओं में शोर मच जाता है ।

एक—अभी नहीं, अभी नहीं ।

दूसरा—एक और मधु-मय-मादक गान ।

तीसरा—शुष्क धरती की प्यास दो वूंदों से न बुझेगी,
देवि ! उसे तो अमृत-वर्षा चाहिए ।

भारमली गाती है—

सिखा दो ऐसी मीठी तान !

विह्वलता में जिसको गाकर,

पागल हों ये प्राण !

सिखा दो ऐसी मीठी तान !

पट-परिवर्तन

मन्त्रि-मण्डल की बैठक

प्रधान मन्त्री—क्यों केशव जी, आपका क्या विचार है ?
सन्ध्या होने को आयी है और कुमार अभी तक नहीं पधारे,
तो क्या उनकी अनुपस्थिति में ही इन विषयों पर भी विचार
होने दिया जाए.....

भोटिंग भट्ट*—कुमार को आना चाहिए था ।

मन्त्री—अथवा इस अन्तिम विषय को कल पर स्थगित कर
दिया जाए ?

धनेश्वर राय—नहीं, अमात्यवर, स्थगित नहीं । ऐसे महत्व-
पूर्ण विषय को कल पर नहीं टाला जा सकता । महाराणा
लक्षसिंह के राज्यकाल में सर्वत्र शान्ति का निवास है; शत्रुओं
के साहस ढीले पड़ गये हैं; बाह्य-आक्रमणों का डर नहीं रहा
और वर्षों के विपत्तिमय जीवन के पश्चात् मेवाड़ को सुख की
साँस मिली है, इस समय विरोधियों का, मेवाड़ की उन्नति तथा

* भोटिंग भट्ट दशपुर (दशोरा) जाति के ब्राह्मण थे । इनका
वास्तविक नाम कीर्तिमान केशव था । ये बहुत सी विद्याओं में निपुण थे
और अनेक शास्त्रार्थों में विजयी हुए थे । इनको भोटिंग भट्ट कहा जाता
था । महाराणा लक्षसिंह ने इनको पिपली गाँव और धनेश्वर राय को पंच
देवालय गाँव दिया था । ये बड़े राजभक्त थे । (राजपूताने का इतिहास)

प्रगति से ईर्ष्या रखने वालों का इतनी भारी संख्या में आना आशंका से रहित नहीं। इससे शान्ति भंग होने की संभावना है। वह शीघ्र हो अथवा कुछ देर बाद, पर वह होगी अवश्य; दूरदर्शिता कह रही है, वह अवश्य होगी।

भोटिंग भट्ट—उनका आगमन अच्छा नहीं—यह अशान्ति लायेगा, यह विपत्ति लायेगा। नक्षत्र कह रहे हैं, लक्षण संकेत कर रहे हैं। जो युद्ध से न हो सके वह यों होगा। ओह ! भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है ? भगवान एकलिंग हमारी रक्षा करें, भगवान एकलिंग.....

मन्त्री—घबराएँ नहीं कीर्तिमान जी ! मेरे विचार में कुछ और लक्षण कुमार की प्रतीक्षा की जाय, उनकी जो सम्मति हो वह युवराज तक पहुँचायी जाए और यदि वे मानें तो फिर महाराणा से अनुरोध किया जाए कि बैठे बैठायें यह विपत्ति मोल न लें। दूध देकर विषधरों को न पालें !

भोटिंग भट्ट—दस सहस्र डोडी ! मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ में !! वे किसी वेष में आये हों, वे असहाय बन कर आये हों, वे भिखारी बन कर आये हों, पर अवसर मिलने पर वे काटेंगे, डंक मारने से बाज न आर्येंगे।

निराशा से सिर झुका लेते हैं।

कोषाध्यक्ष—जितनी देर में कुमार आयें, ज़रा इस बात पर भी विचार कर लिया जाय।

मन्त्री—हाँ, हाँ, कहिए आप क्या कहना चाहते हैं ?

कोषाध्यक्ष—महाराणा ने युवराज के कहने पर रानी पद्मिनी के महलों के भग्न-खंड पुनः बनाने की आज्ञा दी थी, इस पर अनुमान से कहीं अधिक व्यय हुआ.....

मन्त्री—हूँ !

कोषाध्यक्ष—अब युवराज का अनुरोध है कि महलों के खंडहरों में, जो बन सकते हों, वे अवश्य बनाये जायँ !

मन्त्री—फिर ?

कोषाध्यक्ष—छोटे कुमार किसानों की सुविधा के लिए पानी के और बाँध बनवाना चाहते हैं और स्वयं महाराणा ने सीमान्त पर दुर्ग-निर्माण की आज्ञा दे रखी है ।

मन्त्री—मैं जानता हूँ ।

कोषाध्यक्ष—यह सब कुछ एक साथ न आरम्भ हो सकेगा ।

मन्त्री—क्यों ?

कोषाध्यक्ष—कोष में इतना रुपया नहीं । आय से व्यय अधिक हो चुका है ।

मन्त्री—जावर की खानें.....

कोषाध्यक्ष—पिछले वर्ष तक निकली हुई चाँदी से जो आय हुई वह सब समाप्त हो चुकी है । आज तक बीसियों कुण्ड, बाँध, सरोवर, मीलें और दुर्ग बनाये जा चुके हैं; बीसियों मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया गया है; नये महल बनाये गये हैं; पिछोला मील

पर रुपया लगाया गया है; आखिर यह सब खर्च आता कहाँ से ह ? जावर की चाँदी की आय ही से तो । लगान से तो राज्य का काम भी नहीं चल सकता ।

नेपथ्य में —कुमार राघवदेव की जय ! कुमार राघवदेव की जय !!

सब—लो कुमार आ गये ।

सब उठ कर खड़े होते हैं ।

सेवकों और सामन्तों के साथ कुमार राघवदेव का प्रवेश ।

सेवक बाहर चले जाते हैं ।

मन्त्री—(अभिवादन करते हुए) आपने बड़ी बात दिखायी देव ! सब विषयों पर विचार हो चुका है ।

कुमार—मैं सामन्तों से क्षमा माँगता हूँ । मैं विवश था । लोकप्रियता का मार्ग बड़ा कठिन है मन्त्रिवर ! इसमें फिमलन है, कीचड़ है, और गढ़े हैं । कर्तव्य को ही अपना पथ-प्रदर्शक बना कर चलना पड़ता है । नगरी की प्रख्यात गायिका भारमली का संगीत हो रहा था और मैं संयोजकों का अनुरोध न टाल सका ।

मन्त्री—सेवकों के अनुरोध का मान रखना ही स्वामियों की सहृदयता है और कुमार उदागशय हैं ! (कोषाध्यक्ष से) हाँ, आप अपनी बात जारी रखें ।

कोषाध्यक्ष—मैं कह रहा था कि एक ही ढंग से सब काम भली भाँति पूरे हो सकते हैं ।

मन्त्री—कैसे ?

कोषाध्यक्ष—यही कि लगान बढ़ा दिया जाय ।

कुमार—(चौंक कर) लगान बढ़ा दिया जाय, क्यों पृथ्वीनाथ जी, ऐसी कौन सी विपत्ति आ पड़ी, जिससे बेचारे किसानों पर अधिक बोझ डालना अनिवार्य हो गया ?

कोषाध्यक्ष—इतने काम एक साथ कैसे आरम्भ हो सकते हैं, कुमार ! रावल रत्नसिंह के महलों का पुनर्निर्माण, नये बाँध और दुर्ग बनाना । कोष में इन सब कामों का बोझ उठाने की शक्ति नहीं । इसके अतिरिक्त और कोई साधन दिखायी नहीं देता ।

कुमार—(कुछ छोच कर) बाँध अत्यन्त आवश्यक हैं । अनावृष्टि के दिनों में किसानों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा । और दुर्ग, मेवाड़ को सदैव बाह्य-आक्रमणों से सुरक्षित रखने के लिए उनका निर्माण भी जरूरी है और खंडहर—खैर मैं युवराज से बात करूँगा और जो निश्चय होगा, उसकी सूचना आपको दे दी जायगी ।

मन्त्री—एक बात और है जिसके लिए आप को कष्ट दिया गया है ।

कुमार—मैं प्रस्तुत हूँ ।

मन्त्री—आज ही श्री कीर्तिमान केशव ने मझे यह बात आप

तक पहुँचाने को कहा है कि राज्य की शान्ति के लिए राठौर-कुमार रणमल का आगमन शुभ नहीं। वे अनिष्ट की आशंका करते हैं। आप राठौर कुमार को किसी तरह टाल क्यों नहीं देते ?

कुमार—शरणागत को शरण न दी जाय, आप क्या कहते हैं अमात्य ! ऐसा कभी हुआ है, ऐसा कभी हो सकता है ? क्या राजपूत, केवल अनिष्ट की आशंका से अपने कर्तव्य के पथ से विचलित हो जायेंगे, अपनी मर्यादा छोड़ देंगे ?

भोटिंग भट्ट - (आवेश में उठ कर) यह शुभ नहीं कुमार ! हमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया, जो शास्त्र कहते हैं, वह आपको बता दिया। डोडियों का आगमन ठीक नहीं। इनके साथ विपत्ति आयेगी, मुसीबत आयेगी—राज्य-परिवर्तन, धन और जन की हानि, अशान्ति—सर्वत्र अशान्ति, ओह ! भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है ?

बेचैनी से घूमते हैं।

कुमार—अशान्ति हो, महानाश अथवा प्रलय, पर राजपूत अपनी मर्यादा को छोड़ देंगे, ऐसा नहीं हो सकता। सूर्यवंश में कभी ऐसा नहीं हुआ। रणमल हमारे अतिथि हैं; हमारी शरण में आये हैं। उनकी रक्षा करना हमारा धर्म है; विपत्तियों का सामना करके भी उनकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है।

उठ खड़े होते हैं।

भोटिंग भट्ट—कुमार... ..

कुमार—अंधेरा बढ़ चला है और मुझे अभी नगर में कई स्थानों पर जाना है। अनाथालयों में मेरी प्रतीक्षा होती होगी, बच्चे मेरी बाट देख रहे होंगे।

सामन्तों के साथ प्रस्थान

मन्त्री—हम युवराज से कहेंगे, हम महाराज से प्रार्थना करेंगे। आप शान्त हों। मेवाड़ पर आने वाली विपत्ति की रक्षा की जायगी।

दूसरे मन्त्रियों के साथ प्रस्थान

भोटिंग भट्ट—नहीं समझे, विपत्ति कहीं बाहर से न आयगी; यहीं सब कुछ घटेगा। लड़ाई न होगी; युद्ध न होगा; अनहोनी बातें होंगी; अनजानी विपत्तियाँ दूटेंगी! ईर्ष्या, द्वेष और गृह-कलह की आग में मेवाड़ जल उठेगा। भस्म हो जायगा।

(धनेश्वर से) चलिए पण्डितवर !

निराश भाव से दोनों का प्रस्थान

पट-परिवर्तन

महाराणा लक्षसिंह और उनकी रानी

लक्षसिंह—तुमने ठीक ही कहा रानी ! वास्तव में राज्य मैं नहीं करता । मैं तो नाम का राजा हूँ । राज्य तो तुम्हारे दोनों कुँवर करते हैं । मैं इन्हीं दो आँखों से देखता हूँ, इन्हीं दो कानों से सुनता हूँ और मस्तिष्क के इन्हीं दो कोनों से सोचता हूँ । यह जो कुछ तुम्हें मेवाड़ ' दखायी दे रहा है, यह सब सुधार और पुनर्निर्माण—इन पर हस्ताक्षर तो मेरे हैं, पर इन्हें लिखाने वाला प्रेरणा का हाथ कुमारों ही का है ।

रानी—महान् आत्माएँ अच्छे कामों का श्रेय आप नहीं लिया करतीं ।

लक्षसिंह—नहीं रानी ! मैं महान् नहीं । और मैं तो सोचा करता हूँ कि मैं विचारक, सुधारक अथवा प्रबन्धक कुछ भी नहीं । मैं तो केवल सिपाही हूँ, तलवार पर भरोसा रखने वाला, बात पर कट मरने वाला राजपूत सिपाही ! और जो कुछ मैं समझा जाता हूँ, अथवा समझा जाऊँगा, वह सब कुछ मैं नहीं हूँ ।

रानी—आप सैनिक हैं, मुझे इस पर खेद नहीं । मैं अपने सैनिक स्वामी पर गर्व करती हूँ । कौन राजपूतनी है जिसका हृदय इस विचार से फूल न उठता होगा कि उसका पति सच्चा

राजपूत है। वह घर में बैठने वाला भीरु, कायर और डरपोक व्यक्ति नहीं, बल्कि अपने देश के हित, मान के हित और मर्यादा के हित प्राणों को अर्किचन समझने वाला वीर राजपूत है, परन्तु आप तो सच्चे सिपाही होने के साथ प्रजा-वत्सल, कर्तव्य-परायण शासक भी हैं, इस बात को मैं कैसे भूल सकती हूँ ?

लक्षसिंह—हम तीनों बाप बेटे क्या हैं रानी, इस बात का पता हमारी रुचियों से चल जायगा। हम जो कुछ करते हैं, जो कुछ बनाते हैं, उससे हमारा व्यक्तित्व भली-भाँति झलकता है। युवराज सच्चा राजपूत है और राजपूत संस्कृति पर जान देता है। मेवाड़ के पुराने खँडहर—जहाँ राजपूतों का रक्त बहा है उसे अत्यन्त प्रिय हैं और उनकी रक्षा को वह देश का सबसे महत्वपूर्ण काम समझता है। राघव प्रबन्धक और सुधारक है। उसके प्रेम की वस्तु जनता है और उसे सुखी बनाना उसके जीवन का चरम-ध्येय है। रहा मैं—मैं तो लड़ाका हूँ, युद्ध से जिस चीज का सम्बन्ध है वह मुझे प्रिय है। मेरे बनाये हुए दुर्ग मुक्त-कंठ से मेरे कथन की गवाही देंगे।

रानी—मैं अपने योद्धा राना पर गर्व करती हूँ। मुझ से प्रसन्न कोई नहीं।

लक्षसिंह—परन्तु रानी जानती हो, कुमारों की इच्छाओं के आगे मैं अपनी अभिलाषाओं से हाथ खींचलेता हूँ। अभी हाल

ही में मैंने सीमा पर नये दुर्ग बनाने की आज्ञा दी थी, परन्तु युवराज ने अलाउद्दीन के प्रलयकारी हाथों से विध्वंस किये गये रावल रत्नसिंह के भग्न महलों को दोबारा बनवाने की इच्छा प्रकट की और कुमार राघव किसानों के लिए बाँध बनवाने का अनुरोध करने लगा। कोष में इतना धन था नहीं, कुमारों को मैं दुखी न करना चाहता था, विवश होकर अपनी इच्छा मुझे अगले वर्ष के लिए स्थगित करनी पड़ी।

रानी—आपको अपने पुत्रों से अपार प्रेम है।

लक्षसिंह—नहीं रानी, प्रेम तो अपनी सन्तान से सभी को होता है। मुझे तो उनसे प्रेम ही नहीं वरन् उन पर श्रद्धा भी है। मुझे उन पर गर्व है। उनको देख कर प्रसन्नता से मेरी छाती फूल उठती है।

रानी—और मेरे पुत्र भी, महाराज ! बड़े पितृ-भक्त हैं। समय आने पर वे अपना सर्वस्व अपने पिता की साधारण सी इच्छा पर न्योछावर कर सकते हैं।

लक्षसिंह—मैं खुश हूँ, अति प्रसन्न हूँ।

दासी का प्रवेश

दासी—महाराज, प्रधान मंत्री कुछ बात करना चाहते हैं।

रानी—उन्हें इधर ही ले आओ !

दासी का प्रस्थान

रानी—हेमलता को अपने राज्य से आये कई दिन हो गये, मैं उससे उधर का हाल भी न पूछ सकी। कुछ ही दिन तो रहेगी वह, मैं चलती हूँ (उठती है ।) यह भी देखूँगी कि हमारी सुकेशी कुछ गुनगुनाने भी लगी है या नहीं। भारमली को आये तो काफ़ी दिन हो गये हैं।

लक्ष्मि—भारमली कौन ?

रानी—सुनती हूँ नगरी की प्रसिद्ध गायिका है। इतनी सी आयु में इतनी निपुणता ! महाराज, गाती है तो जादू फूँक देती है। मैंने छोटे कुमार के अनुरोध से उसे महलों में रख लिया है।

प्रस्थान

अमात्य प्रवेश करते हैं और महाराजा को अभिवादन करते हुए एक आसन पर बैठते हैं।

लक्ष्मि—आओ अमात्यवर, आज ऐसे समय में कैसे पधारे ?

प्र० मन्त्री—महाराज, एक कठिन समस्या उपस्थित है। आपने मंडोवर-कुमार रणमल को अपने यहाँ आश्रय दिया है.....

लक्ष्मि—(कुछ चौंक कर) क्यों इसमें क्या बुराई है ?

प्र० मन्त्री—मंडोवर के राव चूड़ावत, बाहर से चाहे कुछ हों, परन्तु हृदय में हम से ईर्ष्या रखते हैं।

लक्षसिंह—यह और भी कारण है कि उनके ज्येष्ठ पुत्र को आश्रय दिया जाय, उन्होंने केवल छोटी रानी के प्रेम से वशीभूत होकर उसे राज्याधिकार से च्युत करके अपना देश छोड़ने पर विवश कर दिया है। समय आने पर रणमल को मंडोवर का राणा घोषित करके मंडोवर को अपने अधिकार में लाया जा सकता है।

प्र० मन्त्री—किन्तु पण्डित कीर्तिमान ने कहा है.....

लक्षसिंह—(तनिक आकुलता से) उन्होंने ने क्या कहा है ?

प्र० मन्त्री—कि यदि रणमल मेवाड़ में रहे तो मेवाड़ पर कोई अज्ञात विपत्ति आयगी।

लक्षसिंह—अज्ञात विपत्ति आयगी ?

प्र० मन्त्री—हाँ महाराज, वे ऐसा कहते हैं।

लक्षसिंह—अज्ञात विपत्ति आयगी, परन्तु शरण में आये हुआओं को आश्रय देना तो राजपूतों का पुरातन कर्त्तव्य है, असहाय की सहायता करना तो उनका धर्म है। राजनीति को छोड़ भी दिया जाय तो धर्म और मर्यादा को कैसे छोड़ा जा सकता है ? (सोचते हैं।) युवराज से पूछा ?

प्र० मन्त्री—हाँ महाराज !

लक्षसिंह—उन्होंने क्या कहा ?

राणा—युवराज ने कहा.....

युवराज चंड का प्रवेश

चंड—जो मैंने कल कहा था, वह आज भी कहता हूँ।

पिता जी ! हम राजपूत हैं; राजपूतों में श्रेष्ठ हैं; मेवाड़ जैसे राज्य के अधिपति हैं, यदि हम आश्रितों को आश्रय न देंगे तो और कौन देगा ?

प्र० मन्त्री—किन्तु कीर्तिमान.....

चंड—अनिष्ट की आशंका करते हैं, यही न ! मैं कहता हूँ, यदि अनिष्ट की आशंका न हो, बल्कि निश्चय हो तो क्या राजपूत अपनी मर्यादा को छोड़ देंगे ? क्या अपनी पराजय को सामने देख कर वे युद्ध से पीठ मोड़ लेंगे ? यह जीवन तो एक संघर्ष है मन्त्रिवर ! अपने कर्त्तव्य के अनुसार युद्ध करने वाला यदि हार भी जाय तो जीत उसी की है और कर्त्तव्य के पथ से विचलित होकर जीत जाने वाला भी पराजित है, हारा हुआ है !

लक्ष्मि—राघव की क्या सम्मति है ?

चंड—राघव की सम्मति क्या होगी पिता जी ! वह क्या राजपूत नहीं, उसकी नसों में क्या सूर्यवंशी लहू नहीं ? और सुनिष्ट मन्त्रिवर ! हमें रणमल को न केवल आश्रय देना है, बल्कि अवसर पड़ने पर मंडोवर का राज्य भी दिलाना है ।

प्र० मन्त्री—परन्तु रणमल शायद सच्चा राजपूत सिद्ध न हो ।

चंड—न सही, हमें अपने कर्त्तव्य से काम है, दूसरे के कर्त्तव्य से नहीं । यदि दूसरा अपने कर्त्तव्य का पालन न करे तो क्या हम भी न करेंगे ?

प्र० मन्त्री—उसके चरित्र पर भी शंका की जा सकती है । मैं जानता हूँ, मेरे पास प्रमाण हैं ।

युवराज—इससे क्या प्रयोजन है मन्त्रिवर ! जिसे आश्रय दे दिया, दे दिया, फिर वह कैसा भी दुष्ट क्यों न हो, आश्रय-दाता का काम तो आश्रय देना है उसके गुण-दोषों का विवेचन करना नहीं ।

तेज़ी से प्रस्थान

प्र० मन्त्री—तो महाराज

लक्षसिंह—मैं क्या राजपूत नहीं अमात्य, आप क्या राजपूत नहीं हैं ? जाइए मंडोवर-कुमार के रहने का प्रबन्ध कीजिए । राजपूतों के सिद्धान्त अनिष्ट के आगे कभी ढीले नहीं पड़े ।

मन्त्री—जो आज्ञा ।

प्रस्थान

पट-परिवर्तन

वाटिका में भरने के किनारे श्वेत चबूतरा
भारमली सितार से सिर लगाये तन्मय-भाव से गा रही है—

आज हृदय में उठ-उठ आते,
आँखों के पथ से बह जाते,
ये मेरे उद्गार !

पागल,

ये मेरे उद्गार !

भ्रंश उठती है मानस में,
आज नहीं जी अपने बस में,
टूट चले सब तार !

पागल,

ये मेरे उद्गार !

रणमल का प्रवेश

रणमल—भारमली !

भारमली—(चौक कर) कौन, मंडोवर कुमार !

रणमल—नहीं रुक सका भारमली ! यह चाँदनी रात, यह
उज्ज्वल भरना, यह मन्द समीर ! मैंने लेटना चाहा, लेट न सका,
सोना चाहा सो न सका, आँखें बन्द कीं, पलक भारी न हुए।
नस नस में, रोम रोम में एक ज्वाला धधक रही है और तुम्हारा

यह करुणापूर्ण गीत बयार के उन्मत्त भोंकों की भाँति उसे भड़का रहा है ।

उसे कंधे से छूता है, तड़प कर भारमली उठ खड़ी होती है ।

भारमली—मंडोवर कुमार !

रणमल—आँखों को मूर्तिमान क्रोध बना कर, ज्वाला जैसी इस दृष्टि से मुझे न देखो भारमली ! मैं तो तुम्हारी एक सहानुभूतिपूर्ण निगाह का भिखारी हूँ, यह आग जैसी दृष्टि मुझ पर न डालो । अग्नि को बुझाने के लिए शीतल जल की आवश्यकता होती है, आग से आग कब बुझ सकेगी ?

भारमली—रात के समय यहाँ आने का दुस्साहस आपको कैसे हुआ कुमार ! आपको लज्जा नहीं आती ?

रणमल—मैंने पहले कहा न भारमली ! मैं रुक नहीं सका । मैंने चाहा मैं न आऊँ, यह दुस्साहस न करूँ, निर्वसित मैं, आश्रित मैं—पर तुम्हारा गीत, तुम्हारे सुन्दर सुषमा से बने हुए मुख की कल्पना, आकाशगामी चाँद के सामने धरती के इस चाँद को देखने की लालसा, मैं नहीं रुक सका, अपने आप पर अंकुश नहीं रख सका ।

आगे बढ़ता है ।

भारमली—(पीछे इटती हुई) मंडोवर-कुमार, मंडोवर-कुमार !

बढ़ कर उसे कन्धों से थाम लेता है, भारमली भटका

देकर उसे धकेल देती है।

भारमली—वहीं खड़े रहो राठौर, नहीं अच्छा न होगा !

रणमल—मैं तुम्हें कुछ कहता तो नहीं भारमली ! मैं तो—

तेजी के साथ राघव का प्रवेश

‘कुमार’, ‘कुमार’ कह कर भारमली डरी हुई मृगी के

समान उसके पास जा खड़ी होती है।

राघवदेव—(रणमल को देख कर) मंडोवर-कुमार !

रणमल—चुप

राघवदेव—ऐसा साहस फिर कभी न करना कुमार ! तुम
हमारे अतिथि हो, नहीं तो.....लज्जा तुम्हारे पाँव की जंजीर
बन जानी चाहिए।

क्रोध से मुख तमतमा जाता है, रणमल धीरे धीरे खिसक जाता है।

राघवदेव और भारमली निमिष-मात्र के लिए एक दूसरे को

देखते हैं और फिर आँखें नीची कर लेते हैं।

राघवदेव—मैं जाता हूँ देवि, मैं फिर चेतावनी दे दूँगा। अब
राठौर को कभी ऐसा साहस न होगा !

चलते हैं !

भारमली—कुमार !

रुक कर कुमार उसकी ओर देखते हैं।

राघवदेव—कोई और बात है देवि !

भारमली चुप रहती है, कुमार तेजी से चले जाते हैं।

भारमली—(निश्वास लेकर) कुमार, कुमार, ओह ! मैं बात न कर सकी, कितना चाहती थी, पर बात तक न कर सकी !

लम्बी साँस भर कर फिर चबूतरे पर जा बैठती है

और फिर गाने का प्रयास करती है—

जाओ मैं क्या रोक सकूँगी

क्या कह कर मैं टोक सकूँगी,

क्या मेरा अधिकार ?

पागल,

ये मेरे उद्गार !

सितार रख देती है ।

—नहीं गाया जाता, जिह्वा कुछ कहती है, मन कुछ कहता है, वह मन का साथ नहीं देती, मन उसका साथ नहीं देता ।

फिर दीर्घ-निश्वास छंभती है

सितार उठा कर धीरे धीरे चली जाती है ।

रणमल एक वृत्त के पीछे से निकलता है ।

रणमल—(धीरे धीरे टहलता हुआ जैसे अपने से) चली गयी । चली जाओ, किन्तु स्मरण रखना भारमली ! एक दिन तुम्हें मेरी होना होगा और कुमार ! तुम्हें मेरे मार्ग से हट जाना होगा, नहीं तो मैं स्वयं हटा दूँगा, सदा के लिए इस मार्ग से हटा दूँगा ।

मंडोवर की एक राज्य-वाटिका
बड़ी रानी कुसुम और उसकी दासी रेवा

रानी—भूठ कहती हो रेवा, अब वे दिन गये। पत्नी अपने भाग्याकाश की पूरी ऊंचाई पर उड़ चुका। अब तो वह गिरता जायगा और कौन जाने पतन के पाताल की किन गहराइयों में जा पड़े ?

दासी—कातर न हों महारानी !

रानी—कातर ! (विषाद से मुसकराती है ।) अब कातर होने से क्या लाभ ? कभी समय था, जब मेरी तनिक सी कातरता से मंडोवर के महलों की अट्टालिकाएँ तक काँप जाती थीं। तब यह कातरता कुछ महत्त्व रखती थी। अब इससे क्या लाभ ? कुचला हुआ साँप विष घोलेगा तो स्वतः शक्ति-हीन होगा, पंख-हीन पक्षी तड़पेगा तो अपने ही को घायल करेगा !

दासी—महारानी ! वे दिन फिर आ सकते हैं।

रानी—नहीं रेवा, उड़ चुकी ! खूब उड़ चुकी ! अब और उड़ने की लालसा नहीं। सोचती हूँ, यदि विधि को यह पतन ही दिखाना था, तो उसने वह विशाल ऊँचा आकाश दिखाया ही क्यों ? यदि विष का यह कड़वा घूँट ही पिलाना था तो सुधामृत चखाया ही क्यों ?

दासी—कातर न हों महारानी !

रानी—अब महारानी कहाँ ? जब महाराज मेरे थे, तब मैं महारानी थी। अब तो वे गुहिल-वंशीय रानी के इंगित पर नाचते हैं, अब वह सुन्दरता के पुजारी हैं, तब फिर महारानी कहाँ ? जिसके देखते-देखते उसकी सौत का पुत्र, छोटा होते हुए भी, युवराज बना दिया जाय; जिसके महलों में महाराज कभी भूल कर भी पाँव न रखें, वह महारानी कहाँ ? वह एक दासी से भी गयी-बीती है। दासी और इस अधिकार-हीन रानी में अन्तर ही क्या है ? दासियाँ भी महलों में रहती हैं, यह भी महलों में रहती है। बड़ी दासियाँ छोटी दासियों पर शासन करती हैं, यह भी करती है। इसे एक बड़ी दासी समझ लो।

दासी—आप महारानी ही हैं। हंस पंख-हीन भी हो जाय तो हंस ही कहाता है, कौआ नहीं कहाता, चलिए, उन आभों की शीतल छाया में बैठें। आप स्वरथ नहीं हैं।

रानी—(दीर्घ निश्वास छोड़ कर) तू नहीं जानती रेवा, मेरे हृदय में कौन सी ज्वाला धधक रही है, कौन सी झंझा उठ रही है। (धीरे धीरे) कुँवर चला गया—अपनी माँ को अकेली छोड़ कर, अपना भाग्य-निर्माण करने के लिए चला गया। मैं उसे रोक तक न सकी.....

दासी—रणमल वीर राजपूत हैं महारानी ! सिंहासन चीज ही क्या है ? यह तो पुरुषों की शक्ति का खिलौना-मात्र है।

पुरुषों के हाथों राज्य बनते और बिगड़ते आये हैं। राज्य पुरुषों के लिए बने हैं, पुरुष राज्यों के लिए नहीं बने। कुँवर वीर राज-पूत हुए तो अपने अधिकार स्वयं प्राप्त कर लेंगे। अधिकार मिलते नहीं, लिये जाते हैं।

रानी—रेवा ! तुमने मेरे हृदय का ताप हर लिया। क्या ऐसा हो सकेगा ? क्या मैं फिर अधिकार-युक्त पुत्र का मुँह देख सकूँगी ? इस तप्त-हृदय को फिर शान्ति मिलेगी ? चलो वहाँ आमों की छाया में बैठें।

दोनों आमों की छाया में बैठती हैं।

रानी—रेवा ! कुछ गाओ—कोई मीठा मादक गीत ! जिस से हृदय की जलन दूर हो जाय; जिससे मस्तिष्क का क्लेश मिट जाय; जो कुछ क्षण के लिए दुखों को भुला दे, विस्मृति के गर्त में विलुप्त कर दे।

रेवा गाती है।

पतन में अवसित है उत्थान !

चढ़-चढ़ गिरना, गिर-गिर चढ़ना, जीवन का आख्यान।

पतन में अवसित है उत्थान !

उठने पर क्यों खुश होता मन ?

गिरने पर तू क्यों रोता मन ?

जीवन तो बहता सोता मन !

एक दशा में नहीं रहेगा, मान मान मतिमान !

पतन में अवसित है उत्थान !

रानी—कदाचित ठीक हो किन्तु इस पतन में उत्थान होगा या नहीं, कौन कह सकता है ? (सामने देख कर) वे महाराणा आ रहे हैं, चलो चलें रेवा ।

दोनों झूठ कर धीरे धीरे चली जाती हैं ।

छोटी रानी के साथ राव घूड़ावत का प्रवेश !

राव—तो तुम्हारा यही निश्चय है । मेवाड़ के दोनों कुमारों की ख्याति अपने देश की दोनों सीमाओं को पार करके दूर-दूर पहुँच चुकी है । उनकी तलवार का लोहा, यवन, जोगा दुर्गाधिप, मेदों के सरदार तथा दूसरे मान चुके हैं, किन्तु मैं चंड से राघव को अधिक पसन्द करता हूँ । मैंने उसकी सुन्दरता, उसके दान, उसकी वीरता और अन्य गुणों की कहानियाँ सुनी हैं, वह कलाकार है और चंड, वह तो राजपूत है—सीधा साफ़ सोलह आने राजपूत—बात का धनी, साहसी और निडर । उसमें रस होगा, मैं नहीं कह सकता । हाँ ! उसमें कर्तव्य है, पत्थर की तरह कड़क*, चट्टान की भाँति दृढ़ ! अब सोच लो !!

रानी—क्या राघव मेवाड़ के राजा होंगे ?

राव—वह चंड से छोटा है । युवराज तो चंड ही है । राघव को, हो सकता है, अच्छी जागीर मिल जाय परन्तु मेवाड़

का भावी राणा तो चंड ही होगा ।

रानी—तो हंसाबाई का विवाह उन्हीं से हो ! वे राजपूत हैं, यही यथेष्ट है । वे ललित-कलाओं के इतने पोषक न हों, किन्तु राजपूत तो वे सच्चे हैं, और फिर वे केवल जागीरदार न होंगे, मेवाड़ के भावी राणा होंगे ।

राव—जैसी तुम्हारी इच्छा ! मैंने तुम्हारे इस प्रस्ताव के लिए क्या नहीं छोड़ा ? अपना मान नहीं छोड़ा ? अपनी बड़ाई नहीं छोड़ी ? फिर अपनी रुचि छोड़ने में भी मुझे कोई संकोच नहीं !

रानी—महाराज, आप नारियल भिजवाइए ! मैंने सुना है, वे न्याय-प्रिय, नीति-कुशल और प्रजा-वत्सल हैं । वे राणा हुए तो अपने कुल का नाम रौशन कर देंगे । मेरी हंसाबाई ऐसे हो अधिपति की महारानी होगी । मैं स्वयं अधिकार की पुजारिन हूँ महाराज ! और अपनी लड़की को दूसरों की ओर हाथ फैलाते नहीं देखना चाहती । आपका मान भी इसमें कम न होगा महाराज ! मेरी बात का मान रखिए ।

राव -- मैं जाता हूँ । आज ही मन्त्री को नारियल भेज देने का आदेश दे दूँगा ।

प्रस्थान

रानी—रणमल ! तू जा, मेवाड़ का आश्रय ले, परन्तु वहाँ

भी तुम्हें इसी रानी की लड़की के अधीन रहना पड़ेगा । तू क्रोध से तिलमिला कर चला गया । तूने कहा—मैं अधिकार लूँगा, मैं बदला लूँगा—हाँ ! बदला लेना । तुझे भी पता चल जायगा कि तारा से वैर ठानना हँसी खेल नहीं ।

तेज़ी से प्रस्थान

पट-परिवर्तन

पहाड़ की एक कन्दरा
 बाहर नन्दी की मूर्ति बनी है,
 कन्दरा के अर्धगोलाकार मुहाने में एक
 बड़े आकार का घंटा लटक रहा है ।
 भोटिंग भट्ट और घनेश्वर पण्डित

घनेश्वर—अँधेरा गहरा हो रहा है; आकाश मलिन हो गया है:
 सूरज डूब रहा है ।

भोटिंग—काली रात होगी—अँधेरी काली रात !

घनेश्वर—और चाँद भी न होगा, अविवेक के बादल उस पर
 छा रहे हैं ।

भोटिंग—फिर क्या जाने क्या हो ?

घनेश्वर—कौन जाने क्या हो ?

भोटिंग—अच्छा नहीं होगा, मैंने कह दिया था, मैं कहे देता
 हूँ—अच्छा नहीं होगा ।

घनेश्वर—(आतंक से) अच्छा नहीं होगा ! हाँ—अच्छा
 नहीं होगा ।

भोटिंग—कुछ भी हो, अब जब अज्ञान बुद्धि पर शासन
 जमा रहा है, हमें उसका साथ न देना चाहिए, अपना कर्तव्य
 पालन करना चाहिए ।

धनेश्वर—हाँ, हमने सिसोदियों का नमक खाया है। इस समय जब वे अपना भला बुरा न सोचकर झूठी मर्यादा, कुल की झूठी प्रतिष्ठा के लिए मर रहे हैं, हमें उनकी रक्षा करनी चाहिए, उन्हें इस विपत्ति से बचाने का प्रयत्न करना चाहिए।

भोटिंग—(निराशा से) किसी ने भी न सुना, कुमार, युवराज राणा, सब के पास जाना व्यर्थ हुआ।

धनेश्वर—हमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। अवसर पर उनको सावधान कर दिया। अब भी हम अपना कर्तव्य पूरा करेंगे। आने वाली अज्ञात विपत्ति से मेवाड़ को बचाना होगा.....

भोटिंग—जिसकी ओर शास्त्र संकेत कर रहे हैं, जो अवश्य आयगी, जो रोके न रुकेगी।

धनेश्वर—परन्तु भगवान् एकलिंग का जाप करने से उनका प्रभाव तो कम हो जायगा। सम्भव है ग्रहों का कोप शांत हो जाय, विपत्ति आकर टल जाय।

भोटिंग—मैं जाप करूँगा। उस समय तक जाप करूँगा, जब तक मेवाड़ के आकाश से यह बादल छूट नहीं जाते (ऊपर देखकर) विपत्तियों की घटाएँ घिर आयी हैं। आशंकाओं की आँधियाँ चल रही हैं और इनमें हृदय ऐसे काँप रहा है जैसे दो शेरों में भयभीत मृगी।

बादल गरजते हैं, बिजली चमकती है,

धनेश्वर अतंक से देखते हैं।

पटाक्षेप

द्वितीय अंक

१

नेपथ्य से गाने की ध्वनि

तेरे ही कारण भूपाल,

उन्नत हुआ जननि का मस्तक, हुआ पुनः मेवाड़ निहाल
तूने सींच शत्रु का लोहू, किया देश ऊषा सा लाल
तूने भरा पुनः माता का, सुख वैभव, गौरव से थाल
लाखा जी के लाल लोचनों से डरता है भैरव काल
आज हिमालय से ऊँचा है, माँ मेवाड़ भूमि का भाल

तेरे ही कारण भूपाल

लक्षसिंह—मन्त्री ! आज मैं बाह्य स्थिति पर विचार करना चाहता हूँ । देश को सुधारने की ओर आजकल हमारा इतना ध्यान रहता है कि बाहर क्या हो रहा है, इस बात को हम भूल से गये हैं ।

प्र० मन्त्री—महाराज, मेवाड़ की विजयों से शत्रुओं के दाँत खट्टे हो गये हैं और वह कुचले हुए साँप की तरह विष चाहे घोलें, पर फन उठायेंगे. इस बात की सम्भावना नहीं ।

लक्षसिंह—इमारी सीमाओं पर तो कोई गड़बड़ नहीं ?

प्र० मन्त्री—नहीं महाराज ! सब जगह शान्ति है; धनी निर्धन सब बेखटके अपना काम कर रहे हैं; शेर बकरी एक घाट पानी पीते हैं ।

लक्षसिंह—कहीं तीर्थों पर यात्रियों को कोई असुविधा तो नहीं होती ? यात्री त्रिस्थली में बे-रोक-टोक दर्शन तो कर सकते हैं ?

प्र० मन्त्री—काशी और प्रयाग से तो कोई समाचार नहीं मिला महाराज ! हाँ सुना है कि गया को जाने वाले यात्रियों को फिरतंग किया जा रहा है । वहाँ के मुसलमान शासक उन्हें फिर कर देने के लिए विवश करते हैं ।

लक्षसिंह—हमने इतना स्वर्ण, हाथी, घोड़े और चाँदी देकर जो सन्धि की थी, वह क्या व्यर्थ हुई ?

प्र० मन्त्री—महाराज ! आपने सन्धि तो फीरोज़ शाह तुगलक से की थी, परन्तु उसके देहावसान के पश्चात् दिल्ली में अँधेर मचा हुआ है । तैमूर के भयानक आक्रमण के बाद दिल्ली का साम्राज्य छिन्न भिन्न होकर रह गया है, इसलिए स्थानीय शासक यात्रियों को तंग करते हैं ।

लक्षसिंह—तैमूर के सम्मुख रण-क्षेत्र से भाग जाने वाले इन भगोड़े मुसलमानों के विरुद्ध मुझे फिर शस्त्र उठाने

पड़ेंगे। मैं चाहता था, गया का पवित्र-स्थान यवनों के रक्त से अपवित्र न हो। (सोच कर, अपने आप) तो भी एक बार और प्रयास करूँगा और यदि वे इस पर भी न माने तो उन्हें इस उद्वेगता का उचित दंड दूँगा। (मन्त्री से) शासक को लिखो कि वह यात्रियों को तंग न करे। उसे धन की आवश्यकता है तो हमसे ले ले।

प्र० मन्त्री—महाराज, यदि वे न मानें.....

लक्षसिंह—तो पुरानी प्रथा के अनुसार मैं उन पर चढ़ाई करूँगा, इन अत्याचारियों को गया की पवित्र भूमि से निकाल दूँगा। काश! दूसरे लोग भी इस काम में हमारी सहायता करते!

दरबान का प्रवेश

दरबान—महाराज ! मंडोवर से एक ब्राह्मण नारियल लाये हैं।

प्र० मन्त्री—जाओ उन्हें सम्मान-पूर्वक ले आओ।

लक्षसिंह—(मूछों पर ताव देते हुए, मुसकरा कर) युवराज के लिए होगा; हम बूढ़ों के लिए नारियल कौन लायगा।

सब हँसते हैं।

धनेश्वर राय—महाराजा बधाई हो ! आज मेरी चिरसंचित अभिलाषा पूरी हुई; राठौर और सिसोदिया वंश में वैमनस्य दूर हुआ। परमात्मा करे; यह नाता चिरस्थायी रहे और दोनों प्रदेशों में सुख, शान्ति तथा सम्पन्नता लाये।

सेवकों के साथ ब्राह्मण का प्रवेश, ब्राह्मण नारियल

का और सेवक रत्नों का थाल उठाये हुए हैं।

मन्त्री उठ कर ब्राह्मण का स्वागत करता है।

आगत महाराणा का अभिवादन करते हैं।

लक्षसिंह—कहिए ब्राह्मण-श्रेष्ठ ! मंडोवर से किसका नारियल लाये।

ब्राह्मण—महाराज की प्रतिष्ठा दिन दूनी रात चौगुनी हो ! महाराज, मैं मंडोवर की राजकुमारी हंसाबाई का नारियल लाया हूँ।

युवराज चंड प्रवेश करते हैं

और अपने स्थान पर बैठ जाते हैं।

लक्षसिंह—युवराज के लिए लाये हो न ? मैंने तो पहले ही कहा था कि हमारे लिए अब नारियल कौन लायगा ? हमें इन खिलौनों की क्या आवश्यकता है।

सब हँसते हैं।

ब्राह्मण—(भोंप कर) युवराज के लिए।

लक्षसिंह—हमें स्वीकार है।

ब्राह्मण युवराज को तिलक लगाने

के लिए आगे बढ़ता है।

युवराज—(उठ कर) किन्तु मुझे स्वीकार नहीं !

ब्राह्मण डर कर रुक जाता है।

लक्षसिंह—क्यों वत्स ?

युवराज—(ब्राह्मण से) आप तिलक पिता जी को लगाइए !

सब आश्चर्य से चौंकते हैं, किन्तु स्तब्ध बैठे रहते हैं ।

युवराज—हंसाबाई मेरी माता हो चुकीं ।

लक्षसिंह—पागल हो गये हो क्या ?

युवराज—मैं पागल नहीं पिता जी ! आपने जिस नारी के लिए अपनी इच्छा प्रकट की, उसे मैं कैसे ग्रहण कर सकता हूँ ।

लक्षसिंह—इच्छा ! मैंने ?

युवराज—आपने कहा जो—‘हम बूढ़ों के लिए अब कौन नारियल लायगा ?’

लक्षसिंह निरुत्तर होकर मन्त्री की ओर देखते हैं ।

प्र० मन्त्री—युवराज ! महाराणा ने वह बात तो हँसी में कही थी ।

युवराज—मैंने उसे हँसी नहीं समझा अमात्यवर ! अब मैं यह नारियल स्वीकार न करूँगा ।

प्र० मन्त्री—यह कैसे हो सकता है युवराज ! हँसी-हँसी में.....

युवराज—मन्त्रिवर ! हँसी-हँसी में यदि मैं किसी को अपनी माँ कह दूँ, तो क्या मैं उस से किसी और नाते की कल्पना कर सकता हूँ ?

धनेश्वर—शिव, शिव !

प्र० मन्त्री—युवराज, लड़कपन न करो । हँसी की बात को गम्भीरता में नहीं लेना चाहिए । इसके परिणाम पर विचार करो । विवेक और बुद्धि.....

युवराज—मैं नहीं जानता । मैं कुछ नहीं जानता । मैंने ऐसा ही समझा है और रिश्ते की पवित्रता को मैं हँसी-मजाक पर निछावर नहीं कर सकता । जिसे मैंने अपने मन में माँ के रूप में देखा, उसे किस भाँति पत्नी-रूप में देख सकता हूँ ? पिता जी अब विवाह करें तो करें मैं नहीं कर सकता ।

प्र० मन्त्री—उनकी आयु अब विवाह करने की है ?

लक्ष्मि—युवराज !

युवराज—हाँ पिता जी ।

लक्ष्मि—मैंने हँसी में वह बात कही थी, मेरी यह इच्छा कैसे हो सकती है ?.....तुम नहीं समझ सकते !

युवराज—मैं कह चुका हूँ पिता जी ! मैं रिश्ते की पवित्रता को हँसी-मजाक पर कदापि निछावर नहीं कर सकता ।

लक्ष्मि—(ज़रा क्रोध से) तो तुम तब नारियल स्वीकार न करोगे ?

युवराज—मैं विवश हूँ ।

लक्ष्मि—(और भी क्रोध से) नारियल वापस नहीं जा सकता ।

युवराज—(चुप रहता है ।)

लक्षसिंह—(क्रोध तथा जोश से) इस से न केवल राव चूड़ा-वत का अपमान होगा वरन् दोनों राज्यों में देर से दबी हुई मनोमालिन्य की आग धधक उठेगी । यही नहीं, राव रणमल क्या समझेंगे ? क्या वे अपने आपको अपमानित, तिरस्कृत, महसूस न करेंगे और क्या अपने अतिथि का अपमान करने से मेवाड़ का गौरव बढ़ेगा ?

युवराज—(चुप रहता है)

लक्षसिंह—(चीख कर) तो तुम नारियल स्वीकार न करोगे ?

युवराज—(नम्रता से) नहीं !

लक्षसिंह—(उसी स्वर में) तो मैं करूँगा ।

युवराज—मुझे इसमें प्रसन्नता होगी ।

लक्षसिंह—इसका परिणाम सोच लिया ?

युवराज—कर्तव्य के रास्ते में राजपूत परिणाम की चिन्ता नहीं करता !

लक्षसिंह—हो सकता है, तुम्हें सिंहासन से हाथ धोना पड़े ।

युवराज—मैं सेवा में ही स्वर्ग समझूँगा ।

प्रणाम करके तेजी से प्रस्थान

लक्षसिंह—(ब्राह्मण से) ब्राह्मण देवता ! आप दो-चार दिन तक प्रतीक्षा करें. चंड अभी बच्चा है और सोच समझ को बचपन

में दखल नहीं होता । दो-चार दिन तक समझ जायगा ।

सेवकों के साथ ब्राह्मण का प्रस्थान

लक्षसिंह—आप लोग उसे समझाएँ अमात्य ! और मुझे एकान्त में छोड़ दें, मेरा मस्तिष्क जैसे खोल रहा है, समझ और सोच की शक्तियाँ जैसे जवाब दे गयी हैं । कुछ नहीं सूझ पाता, कुछ नहीं समझ पाता !

प्र० मन्त्री—(जैसे अपने आप से) क्या सोचा था और क्या हो गया ।

प्रस्थान

पृथ्वीनाथ—(जैसे अपने आप से) आशा का लहलहाता सरोवर मृग-मरीचिका सिद्ध हुआ ।

प्रस्थान

धनेश्वर—(जैसे अपने आप से) क्या यह सुख लाया, शान्ति लाया ? विधि की कैसी विडम्बना है ! किन्तु, भोटिंग ने कहा था, कीर्तिमान ने कहा था ।

प्रस्थान

सब चले जाते हैं, राणा लक्षसिंह बेचैनी से घूमते हैं ।

लक्षसिंह—(रुक कर जैसे अपने आप से) चंड ! तुम अपने पिता की इच्छा का इतना सम्मान करते हो, मुझे इस पर गर्व होना चाहिए, पर नहीं, निरीह बालिका के जीवन का प्रश्न है ।

फिर घूमते हैं ।

(फिर रुक कर) तो क्या नारियल वापस कर दूँ ? नहीं, मेवाड़ और मंडोव्रर के मध्य लोहे की एक दीवाल खड़ी हो

जायगी, जो तोड़े न तोड़ी जा सकेगी । और फिर संसार क्या कहेगा ? मेवाड़ से नारियल मुड़ गया—न, मैं यह सहन न कर सकूँगा । ओह ! चंड, चंड ! तू ने मुझे किस काठन परिस्थिति में डाल दिया ?

फिर घूमते हैं ।

पट - परिवर्तन

रानी पद्मिनी के महलों का एक उद्यान

हेमवती सहेलियों के साथ प्रवेश करती है।

हेमवती—यह स्थान मुझे कितना प्रिय है। इसके साथ बचपन की कितनी स्मृतियाँ लिपटी पड़ी हैं। ठंडी ठंडी हवा में लम्बे-लम्बे साँस लेना, सुन्दर फूलों पर मँडराते हुए भ्रमरों की गुंजार सुनना और रंग-बिरंगी तितलियों का नृत्य देखना ! मैं जब भी यहाँ आती हूँ, अपने इस प्रिय स्थान को देखने के लिए आतुर हो उठती हूँ।

एक सखी—तो आओ यहीं आमों की घनी छाया में डेरा डाल दें।

हेमवती—(मन्दिर की ओर निर्निमेष देखती हुई) और यह युव-राज के अनुरोध पर बनाया गया रानी पद्मिनी का मन्दिर कितना भव्य, कितना सुन्दर, कितना लालित्यपूर्ण है। मैं उन दिनों की कल्पना करती हूँ, जब विध्वंसकारियों के हाथ इन खंडहरों के छून पाये थे और रानी पद्मिनी इस मन्दिर की पूजा को आती थीं। (मुड़ कर सखी से) देखती हो सखि, वसन्त सूर्य ने अपनी सुनहरी किरणों से इस दृश्य पर कैसा जादू फूँक दिया है ! सामने ऊँचे, लम्बे, हरियाले पहाड़, सिर पर विशाल नीलाम्बर और नीचे नीलम-निर्मल जल-राशि, फिर इन सब को स्वर्ण-दान

देती हुई वसन्त के सूर्य की मीठी-मीठी स्नेहमयी धूप ! युवराज ने इन खंडहरों के जीर्णोद्धार का निश्चय करके सच ही एक बहुत अच्छा काम किया है ।

दूसरी सखी—तुम किधर एक-टक, निर्निमेष देख रही हो राजकुमारी ! आओ कुछ सुस्ता लें, थक गयी हैं; कुछ आराम कर लें ।

हेमवती—नहीं मुझे बहुत दिन यहाँ नहीं रहना । जाने से पहले मैं इन सब को भली-भाँति देख जाना चाहती हूँ । इनकी स्मृति मुझे प्रायः बेचैन कर दिया करती है, चित्तौड़ खींच लाती है, इन्हें देखे बिना मैं आराम न कर सकूँगी । चलो, वह महल भी देख आयें ।

तीसरी सखी—राजकुमारी, चलो अब फिर आयेंगे ।

हेमवती—अब यहाँ पहुँच कर वापस जाना मैं नहीं चाहती । मैं तो सब देख कर ही चलूँगी ।

चौथी सखी—इन टूटे-फूटे खंडहरों में क्या रखा है, जो तुम इन्हें देखने के लिए इतनी लालायित हो ?

हेमवती—(उसकी ओर मुड़ कर) क्या कहती हो, इनमें क्या रखा है ? अब यह भी मुझे तुम लोगों को बताना होगा । इन भग्न-खंडहरों में वीरता और शौर्य का वह इतिहास छिपा पड़ा है जो आज भी राजपूताने के रक्त को गर्म रखता है । यह खंडहर न हों, तो महारावल रत्नसिंह और रानी पद्मिनी के

बलिदान की अद्वितीय कहानी केवल कपोल-कल्पना बन कर रह जाय ।

पहली सखी—चलो राजकुमारी, इनके महत्त्व को ये मूर्ख क्या समझेंगी ।

हेमवती—मैं तुम्हें क्या बताऊँ इनका महत्त्व कितना है ? ये खंडहर हमें क्या बताते हैं ? सुनने वाले कान हों तो इन खंडहरों के टूटे-फूटे पत्थर, इन महलों की जली-फुँकी भित्तियाँ हमें बता-एँगी, कि हमारा कर्तव्य क्या है; बतायेंगी, कि धर्म और मर्यादा के आगे धन और ऐश्वर्य का कोई महत्त्व नहीं; बतायेंगी कि मर्यादा की रक्षा के लिए मेवाड़ के वीर राणा ने किस प्रकार अपने हाथों, अपने जिगर के टुकड़ों को, अपने ग्यारह वीर पुत्रों को, मृत्यु की प्रबल वह्नि में भोंक दिया, किस भाँति स्त्रीत्व की रक्षा के लिए मेवाड़ की रानी ने सहस्रों दूसरी वीरांगनाओं के साथ जौहर की ज्वाला का आलिंगन किया ?

सब चलती हैं ।

हेमवती—(मुड़ कर) सुकेशी कहाँ है ? शायद वह धाय के साथ उधर चली गयी है ।

एक सखी—(आवाज़ देती हुई) सुकेशी, सुकेशी !

हेमवती—लो वह आ ही रही है । आओ चलें, हमारे पीछे आ जायेगी ।

सब चली जाती हैं ।

सुकेशी धाय का हाथ पकड़े प्रवेश करती है ।

सुकेशी—वे इधर गयी हैं, इधर गयी हैं माँ ! आओ हम भी
उधर चलें ।

धाय का हाथ पकड़ कर खींचती हुई ले जाती है ।

पट-परिवर्तन

रणमल का निवास-स्थान

रणमल और बाघसिंह

रणमल—क्या कहा बाघसिंह ! क्यों प्रसन्न हूँ ? इस से बढ़ कर प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है । ओह ! आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ, उल्लास से मरा जा रहा हूँ ।

मदिरा पान करता है ।

बाघसिंह—प्रसन्न ! मैं कहता हूँ आप को दुखी होना चाहिए । आप का आश्रय छिना जा रहा है और आप खुशियाँ मना रहे हैं ।

रणमल—(मूछों पर ताव देता हुआ) आश्रय कैसा बाघसिंह ! मैं स्वयं अपना अवलम्ब हूँ । मैं किसी पर आश्रित नहीं । सिपाही हूँ और सिपाही बन कर यहाँ आया हूँ । फिर सैनिक को सैनिक बन कर रहने में दुख कैसा ? किन्तु यह देखना—किसी दिन मेवाड़ और मंडोवर का ताज इसी सिपाही के मस्तक को सुशोभित कर रहा होगा ।

बाघसिंह—कुमार आप बहुत पी गये हैं । होश में नहीं हैं ।

सुराही इत्यादि उठा कर बन्द कर देता है ।

रणमल—होश में नहीं हूँ ! शायद मैं आज जितना होश में

कभी नहीं हुआ। मैं कहता हूँ, यदि युवराज अपने हठ पर अड़े रहे और हंसाबाई का विवाह लक्ष्मि सिंह से हुआ, तो मुझ से बढ़ कर भाग्यवान दूसरा कोई न होगा। मैं हंसाबाई के दोष जानता हूँ। वह बहुत भोली है। मुझे सौतेला भाई नहीं समझती। माँ के ईर्ष्या-द्वेष से उसे कोई काम नहीं। ऐसे भोले लोगों को राजनीति की बिसात पर गोटे बनाना सुलभ है। बाघसिंह, तुम नहीं समझते। मैं बहुत दूर की सोच रहा हूँ।

बाघसिंह—मैं कुछ नहीं समझा, आप बहुत पी गये हैं।

रणमल—ओह ! यह विवाह हो जाय। फिर मैं देखूँगा— किस तरह छोटी माँ मेरा अधिकार छीन कर, उस नन्हें से बच्चे को मंडोवर का अधिपति बनाये रखती हैं।

बाघसिंह—और मैं कहता हूँ—अब आप को किसी दूसरे घर की राह देखनी चाहिए। आखिर हंसाबाई लड़की तो उसी माँ की है, जिस ने आप को देश से निकल जाने पर विवश किया था। यदि युवराज से हंसाबाई का विवाह होता तो खैर ! उस के रानी होने की सम्भावना इतनी सन्निकट न होती, किन्तु अब तो विवाह होते ही वह मेवाड़ की महारानी होगी और आप क्या होंगे ? उसी गुहिल-वंशीय रानी की लड़की के दास ! जब चाहेगी, आप को यहाँ से खदेड़ देगी।

रणमल—दास ! हा, हा, हा ! (अट्टहास करता है) दास !! तुम बाघसिंह एक दम भोले हो। लड़ना-मात्र जानते हो, बस ! तुम मनुष्य के स्वभाव की गहराइयों को क्या समझो; तुम हंसाबाई को क्या समझो; राजनीति में जीभ की मिठास से जो काम निकलते हैं, उन्हें तुम क्या समझो ? पटुता और चतुराई से राजनीति में जो काम निकाले जा सकते हैं, सहानुभूति और मित्रता का दाना बिछा कर किस तरह पक्षी को फाँसा जाता है, यह सब तुम क्या जानो ? लाओ सुराही दो। यदि आज के दिन न पी, तो और कब पीऊँगा।

बाघसिंह—मैं राजनीति नहीं जानता, इन सब चालों को नहीं जानता, पर एक बात अच्छी तरह जानता हूँ—यह नशे की लत अच्छी नहीं कुमार ! किसी न किसी दिन यह आप को ले डूबेगी।

रणमल—नशे की लत ! बाघसिंह इस संसार में कौन नशे से रहित है ? किसी को धन का नशा है, किसी को जन का नशा है; किसी को प्यार का नशा है, किसी को आधिकार का नशा है ! सब मस्त हैं—अपने-अपने रंग में, अपनी अपनी खाल में। नशा न हो तो संसार नीरस हो जाय। इस में स्पन्दन न रहे, प्राण न रहें।

बाघसिंह—(हँस कर) शायद नशे में आदमी 'दार्शनिक' भी हो जाता है।

रणमल—(ठहाका मार कर) दार्शनिक ! क्या खूब कहा तुमने, आज मैं प्रसन्न हूँ और आज दार्शनिक बनने में भी आनन्द आता है ।

उठकर खिड़की खोलने लगता है ।

सेवक प्रवेश करता है ।

सेवक—कुमार ! युवराज पधारे हैं ।

रणमल—जाओ सम्मान सहित ले आओ । (बाघसिंह से) अब देखना मैं नशे में हूँ ? आज की बात पर ही जीत और हार निर्भर है और मैं जानता हूँ मुझे क्या करना है ।

युवराज चंड का प्रवेश

दोनों खड़े होकर अभिवादन करते हैं ।

रणमल की आकृति गम्भीर हो जाती है ।

रणमल—कहिए युवराज ! आज किस प्रकार इस गरीब पर कृपा की ।

चंड—मुझे आप से एक बात के सम्बन्ध में परामश करना है ।

रणमल—दास प्रस्तुत है ।

चंड—आज प्रातः दरबार में जो कुछ हुआ आप वह जानते हैं ?

रणमल—मैं देर से पहुँचा था, मन्त्री की जबानी सब कुछ मालूम हुआ । आपकी पितृ-भक्ति अद्वितीय है । आप की प्रतिज्ञा ने भीष्म-प्रतिज्ञा की याद दिला दी ।

चंड—(खुशामद से अप्रभावित) क्या ऐसा हो सकता है, आप को दुख तो न होगा ?

रणमल—क्या ?

युवराज—पिता जी से मंडोवर-कुमारी का विवाह ! सच जानिए, मुझे आपका अपमान अभीष्ट न था । मेरी विवशता आप समझ गये होंगे ।

रणमल—हाँ मैं समझता हूँ । आप विवश थे, किन्तु आप ने बड़ा कठोर प्रण कर लिया । आप सिंहासन के अधिकार तक से हाथ धोने को तैयार हो गये ।

युवराज—अपनी प्रतिज्ञा के आगे मैं सिंहासन को कोई महत्त्व नहीं देता ।

रणमल—चाहे आपकी इस अद्वितीय पितृ-भक्ति का सब से कठिन प्रहार मुझी पर होगा, किन्तु फिर भी मैं कहूँगा आप महान हैं, हम आप की चरण-रज की बराबरी भी नहीं कर सकते ।

युवराज—आप बताइए यह हो सकेगा ? इस नाते में आप को तो कोई आपत्ति न होगी ?

रणमल—हंसाबाई अभी बालिका है ।

युवराज—वह मेवाड़ की महारानी बनेगी । हम अब उसके अनुचर होंगे ।

रणमल—किन्तु भविष्य ! आजन्म दासता.....

युवराज—उन का पुत्र मेवाड़ का महाराणा होगा। वे राजमाता बनेंगी।

रणमल—तो आप सिंहासन का अधिकार छोड़ने का निश्चय कर चुके हैं ?

युवराज—आप कहिए, ऐसा हो सकेगा ? मैं सिंहासन की परवाह नहीं करता !

रणमल—पिता जी को कैसे विश्वास होगा ?

युवराज—विश्वास कैसा ?

रणमल—शायद आश्वासन चाहें।

युवराज—आश्वासन ?

रणमल—यही कि यदि हंसाबाई के पुत्र हुआ तो वही राज्य का अधिकारी होगा।

युवराज—मैं भगवान एकलिंग के सामने शपथ ले लूँगा।

रणमल—आप महान हैं, किन्तु सोच लीजिए—आप कितना बड़ा प्रण कर रहे हैं ?

युवराज—कहिए ! यदि इसके बाद आपको आपत्ति न हो ? मैं अपने कर्तव्य के आगे इस से बड़ा प्रण कर सकता हूँ।

रणमल—हाँ ! यदि इतना हो सके.....आप पिता जी को लिख दीजिए।

युवराज—उन्हें मैं आज ही लिखूँगा। आपको तो कोई आपत्ति नहीं ?

रणमल—यदि मेरी बहिन मेवाड़ की रानी बने, मेवाड़ की

राजमाता बने, तो मुझे क्या आपत्ति होगी। किन्तु युवराज ! आप फिर सोच लें।

युवराज—मैं सोच चुका।

चलने को प्रस्तुत होते हैं। रणमल और बाघसिंह उन्हें दरवाजे तक छोड़ने जाते हैं। युवराज के चले जाने पर बाघसिंह कपाल ठोंकता है।

बाघसिंह—आपको क्या हो गया है। नशे में.....

रणमल—क्या बक रहे हो ?

बाघसिंह—स्वयं विपत्ति को निमन्त्रण दे रहे हैं आप।

रणमल—चुप रहो, मुझे सोचने दो।

कमरे में घूमता है।

—कलम दवात लाओ !

बाघसिंह कलम दवात लेने जाता है।

रणमल—(अपने आप) अधिकार के क्षेत्र में एक बार फिर बाज्जी लगाऊँगा। जीत गया, तो सब कुछ अपना है, नहीं तो जहाँ बह गया, वहाँ यह भी सही।

फिर घूमता है। बाघसिंह कलम दवात ले आता है।

रणमल जल्दी-जल्दी एक चिट्ठी लिख कर बाघसिंह को देता है।

—जितनी जल्दी हो सके यह चिट्ठी पिता जी को पहुँचाओ। तेज घोड़ा ले लेना। युवराज जो चिट्ठी भेजें, उस से

पहले यह पहुँच जाय !

बाघसिंह खड़ा रहता है ।

रणमल—यों खड़े क्या देखते हो ? मैं होश में हूँ । एक दो घूँट क्या, सुराही कंठ में उँडेल लूँ, तो भी होश नहीं खो सकता—और फिर ऐसे जीवन-मरण के मामले में ! जाओ ! आने पर तुम्हें सब कुछ बता दूँगा । अभी इतना जान लो कि यदि तुमने यह चिट्ठी समय पर पहुँचा दी तो मैं एक दिन मेवाड़ और मंडोवर दोनों का स्वामी हो सकता हूँ ।

बाघसिंह जाना चाहता है ।

रणमल—सुनो ! (पास जाकर, धीरे-धीरे समझाते हुए) माता जी से कहना—वह भट्टी-सरदार जोधाजित से कहें कि वे आगामी वर्षों में पाँच पाँच, छः छः कर के सैनिक यहाँ भेजते रहें, जो यहाँ की सेना में प्रवेश करने का प्रयास करें ।

बाघसिंह जाना चाहता है ।

रणमल—और सुनो; (धीमे स्वर में) देखो, सब बात गुप्त रखना ! पिता जी के अतिरिक्त किसी को यह चिट्ठी न देना और माता जी के सिवा किसी से यह बात न कहना । जाओ, मैं तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करूँगा ।

बाघसिंह चला जाता है । रणमल पुनः सुराही निकालता

है और प्याले में मदिरा ढालता है ।

—(अपने आप) बाजी लग गयी है छोटी माँ ! देखूँ, तुम्हारी जीत होती है या मेरी । जीत गया तो अपने अपमान का बदला

ब्याज समेत चुका दूँगा और जिसको तुमने मूर्ख, अकर्मण्य और अपदार्थ कहा था, वह कितना नीतिज्ञ है, कितना साहसी है, अधिकार की बाज़ी में कितनी होड़ लगा सकता है, यह सब दिखा दूँगा। और यदि हार गया.....

पीता है।

—किन्तु नहीं, जीतूँगा, अवश्य जीतूँगा।

फिर पीता है।

पट परिवर्तन

मेवाड़ का राज-भवन

राणा लक्ष्मि सिंह और रानी

लक्ष्मि सिंह—तुम समझाओ उसे रानी ! मैं तो हार गया हूँ । तुम उसकी माँ हो, तुम्हारे उपदेशों ने उसे हठी, सत्यव्रती, सच्चा राजपूत बना दिया है । सोचो—मैं अब विवाह करने जाऊँगा ? क्या मैं विवाह के योग्य हूँ ?

रानी—क्यों महाराज, विवाह के योग्य क्यों नहीं, अभी तो.....

लक्ष्मि सिंह—रानी हँसी न करो, तुम नहीं जानती इस समय मेरे मस्तिष्क में कौन सा तूफान उठ रहा है । मैं—सात बच्चों का बाप-बुद्धिमान, कर्तव्य-परायण, वीरपुत्रों का पिता—अब इस आयु में विवाह करने जाऊँगा । अब तो रानी ! मुझे युद्ध में जाना चाहिए । घर में कायरों की मौत मरने की अपेक्षा यवनों के विरुद्ध युद्ध में वीरगति प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए । और मुझे कहा जा रहा है—मैं विवाह करूँ ! तुम उसे समझाओ ।

रानी—मैं उसे क्या समझाऊँ महाराज, क्या वह दूध पीता बच्चा है, क्या वह अपने कर्तव्य को नहीं समझता ।

लक्ष्मि सिंह—कर्तव्य ! रानी ! तम ने कभी इस कर्तव्य का

परिणाम सोचा है। कभी सोचा है, वह कितना भयानक हो सकता है। यह सब भूठी मर्यादा है, भूठा कर्तव्य है।

रानी—महाराज ! राजपूतों ने अपनी बात की टेक रखी है। आप उसे भूठी मर्यादा कहते हैं। इस दृष्टि-कोण से तो पिता के प्रण को पालने के लिए भगवान राम का वन चले जाना, वृद्ध पिता को दुख और क्षोभ में छोड़ कर भी वन को जाना, मूर्खता थी, भूठी मर्यादा की रक्षा थी। पितामह भीष्म का अपने पिता की इच्छा के लिए आयु-पर्यन्त ब्रह्मचारी रहकर अपने प्रण पर चट्टान की भाँति खड़े रहना भी विवेक-हीनता थी, दम्भ था। महाराज ! क्या बात पर मिट जानेवाले पितृभक्त भगवान राम और भीष्म मूर्ख थे ?

लक्ष्मि—तो क्या मैंने हँसी में यह बात नहीं की, क्या मैं विवाह करना चाहता हूँ।

रानी—राजा दशरथ भी न चाहते थे कि राम वन को जाएँ, राजा शान्तनु की भी इच्छा न थी, कि उनका प्रिय देवव्रत इतना भीष्म-व्रत धारण करे। यह तो उन पितृभक्तों की कर्तव्य-परायणता थी कि उन्होंने अपना कर्तव्य समझते हुए ऐसे व्रत लिए और विपत्तियों का सामना करते हुए भी उनका पालन किया। मेरा चंड भी वैसा ही दृढ़-प्रतिज्ञ, वैसा ही सत्य-व्रती है—महाराज ! आप उसके कर्तव्य-पालन को

अपनी बात से छोटा न कीजिए । क्या मैंने एक दिन न कहा था, कि मेरे पुत्र भी कम पितृभक्त नहीं और अवसर पड़ने पर अपने पिता की साधारण सी इच्छा के लिए अपना सर्वस्व तक बलिदान कर सकते हैं ।

लक्षसिंह—और यदि नारियल अस्वीकार कर दूँ ?

रानी—शौक से कर दें, क्या आपको लाज न आयेगी ? क्या मेवाड़ के राज-गृह में आया हुआ नारियल किसी दूसरे के यहाँ जायगा ? क्या मेवाड़ के राणा एक स्त्री को अपनी कह कर, भरे दरबार में कह कर—मैं विवाह करूँगा—उसे त्याग देंगे ? उनके गौरव को धक्का न लगेगा, उनके अभिमान को आँच न आएगी ?

लक्षसिंह—जानती हो, इसका परिणाम क्या होगा ? गृह-युद्ध, ईर्ष्या, द्वेष !

रानी—मेरे पुत्र पर आप यह अभियोग नहीं लगा सकते । वह यदि प्रतिज्ञा करना जानता है तो उसे प्राणपण से निभाना भी जानता है ।

लक्षसिंह—तो तुम चाहती हो, मैं विवाह करूँ ?

रानी—हाँ ! अपने पुत्र की बात रखने के लिए, उसकी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए, आपको यह कड़वा घूँट पीना ही चाहिए ।

लक्षसिंह—रानी तुम ऐसे बातें कर रही हो; जैसे इस बात

का तुम से कुछ सम्बन्ध नहीं। मैं इस वृद्धावस्था में तुम्हारे सीने पर सौत ला बिठाऊँगा, इससे तुम्हें दुख नहीं होता ? बड़ी निष्ठुर हो तुम !

चले जाते हैं ।

—(अपने आप) क्या कहा नाथ, मुझे दुख नहीं होता, मैं निष्ठुर हूँ ! हाय नाथ ! कहीं तुम इस हृदय में पैठ सकते, पैठ सकते तो देखते, इसमें कितनी वेदना है, कितनी व्यथा है ? किन्तु (दीर्घ-निश्वास छोड़ती है ।) क्या करूँ ? राजपूतनी हूँ, जिस बात की शिक्षा स्वयं देती रही हूँ, उसके मार्ग का रोड़ा कैसे बन जाऊँ ?

नेपथ्य की ओर देखती है ।

रानी—चंड आ रहा है। आओ चंड ! अपनी माता को धीर बैधाओ, उसे बल दो, शक्ति दो कि वह इस विपत्ति को हँसते-हँसते जूझ सके ।

युवराज चंड का प्रवेश, प्रणाम करता है ।

रानी—चिरंजीव हो बेटा ! यह तुमने क्या कर दिया ?

युवराज—क्या माता ?

रानी—सारे राज्य में तुम्हारे इस व्रत के कारण हलचल मची हुई है। हर जगह इसी बात की चर्चा हो रही है। बेटा क्या मेरी चिरसंचित आशाओं पर यों पल भर में पानी फेर

दोगे ? क्या मेरे सीने पर सौत को बैठे देख कर, मेरा अपमान, मेरी अवहेलना होते देख कर तुम्हें प्रसन्नता होगी ?

युवराज—माँ !

रानी—बेटा !

युवराज—यदि तुम ऐसी बातें करोगी तो मैं अपने व्रत पर दृढ़ न रह सकूँगा । मुझे तो विश्वास है, कि जिस माँ ने मुझे पितृभक्ति का पाठ पढ़ाया है, वह पति-भक्ति को अच्छी तरह जानती है । माँ ! व्रत चाहे मैंने ही लिया है, किन्तु उसमें शक्ति तो तुम्हारी ही काम करती है ।

रानी—किन्तु मेरा दुख बेटा.....

युवराज—मैं मानता हूँ तुम्हें दारुण-दुख सहना पड़ेगा, पर माँ ! राजपूत-रमणियाँ तो दुखों में पल कर बड़ी होती हैं । अपनी और अपने वंश की मर्यादा रखने के लिए वे जान की कोई परवाह नहीं करतीं । तो क्या तुम अपने पुत्र को कर्तव्य-पथ से हटता देख सकोगी ? क्या तुम्हें यह देख कर प्रसन्नता होगी ? माँ मुझे साहस दो, बल दो, शक्ति दो कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पर पूरा उतरूँ । कठिन से कठिन परिस्थिति मुझे अपने शिखर से न ढिगा सके, बड़े से बड़ा प्रलोभन मुझे अपने पथ से न विचलित कर सके !

रानी—जाओ बेटा ! तुम्हारा कर्तव्य जो सिखाता है, तुम्हारी आत्मा जिस बात की साक्षी देती है, वही करो और प्रार्थना करो कि मुझ में सब कुछ सहने की शक्ति आ जाय । भगवान करे तुम अपने व्रत पर दृढ़ रहो और जब-जब भविष्य

में चित्तौड़-वासी इन पहाड़ों, इन चट्टानों को देखें, तो उनके हृदय-पट पर तुम्हारा चित्र खिंच जाय । उन्हें अपने उस युवराज की याद आ जाय जो अपने कर्तव्य पर इन्हीं की भाँति स्थिर, अविचल, अटल खड़ा रहा था ।

आशीर्वाद देती है ।

पट-परिवर्तन

मंडोवर का राज-भवन

छोटी रानी अपने कमरे में आराम कर रही है, दो दासियाँ सितार बजा रही हैं। राव चूषावत चिन्तामग्न प्रवेश करते हैं। हाथ में एक पत्र है। सब उठ खड़ी होती हैं, अभिवादन करती हैं। दासियाँ चली जाती हैं।

रानी—स्वच्छाकाश पर यह बादल कैसे छा रहे हैं महाराज ? यह उतरा उतरा चेहरा, यह फटी फटी आँखें, किस अनिष्ट की सूचना देती हैं ?

राव—रणमल की ओर से यह चिट्ठी आयी है, पढ़ कर मैं चद्विग्न हो उठा हूँ। क्या सोचा था रानी ! (दीर्घ-निश्वास छोड़ते हैं।) मैं बहुत बेचैन हूँ, तुम नहीं समझ सकती !

रानी—कहो नाथ ! कहो, मैं तैयार हूँ, तुम कहो ! मैं दुख का भार बटा लूँगी। कहो मेरे राव, बड़ी रानी से कुछ झगड़ा तो नहीं हो गया, रणमल ने कुछ कटु बातें तो नहीं लिखीं; बड़ी रानी की ईर्ष्या फिर तो नहीं धधक उठी, मन को कुछ क्रोश तो नहीं पहुँचा ? कहो ! क्या लिखा है इस पत्र में ? (उदास भाव से) वास्तव में मैंने तुम दोनों के मध्य आकर बुरा किया। और फिर आ ही गयी थी तो मुझे अपने हृदय को बस में रखना चाहिए था। पर मैं क्या करती, तुम ही कहो मैं क्या करती ?

राव—नहीं प्रिये ! मैं तो तुम्हारा आभारी हूँ। तुम ने मेरे

जीवन की बुझती हुई बत्ती को अपने स्नेह से फिर जिला दिया, इस शुष्क वृक्ष को अपने स्नेह-रूपी जल से फिर हरा कर दिया। बड़ी रानी तो क्या, मैं समस्त संसार को तुम्हारे लिए तिलांजलि दे सकता हूँ। बात रानी के सम्बन्ध में नहीं, हंसा के सम्बन्ध में है।

रानी—हंसा के सम्बन्ध में ?

राव—देखो चित्तौड़ से रणमल ने यह पत्र भेजा है।

पढ़ते हैं।

पूज्य पिता जी,

यद्यपि मैं निर्वासित हूँ, आप के स्नेह का पात्र नहीं हूँ, फिर भी आप का पुत्र हूँ। हंसा का भाई हूँ। इसीलिए कुछ पक्तियाँ लिख कर आप को इस बात की सूचना दे रहा हूँ।

आप ने जो नारियल युवराज चंड के लिए भेजा था उस के सम्बन्ध में यहाँ एक विचित्र परिस्थिति उठ खड़ी है। जब नारियल दरबार में आया तो कहीं राणा लक्ष्मि सिंह के मुँह से यह निकल गया—यह नारियल तो युवराज के लिए होगा, हम बूढ़ों के लिए कौन नारियल लाता है—बस, इस पर युवराज ने नारियल लेने से इनकार कर दिया और भरे दरबार में हंसा के लिए 'माँ' शब्द का प्रयोग कर दिया। क्रोध में आकर राणा ने स्वयं नारियल स्वीकार करने की प्रतिज्ञा कर ली। वे वृद्ध हैं। मैं नहीं चाहता मेरी बहन एक वृद्ध के गले मढ़ दी

जाय । परन्तु यदि ऐमा हो भी तो ऐसी शर्त अवश्य लगा दी जाय जिससे हंसाबाई का पुत्र ही राज्य का अधिकारी बने । वृद्ध तो घाट किनारे का वृत्त होता है, कौन जाने कब गिर जाय । मेरा विचार है आप मेरी बात समझ गये होंगे ।

आप का निर्वासित पुत्र

रणमल

रानी—इससे बढ़ कर अच्छी बात और क्या हो सकती है ?

राव—क्या कहा रानी, अच्छी बात ! इससे बढ़ कर दुर्भाग्य की बात और कोई नहीं हो सकती !

रानी—कि हंसाबाई मेवाड़ की रानी बने, शक्तिशाली सम्पन्न मेवाड़ की रानी बने, यह दुर्भाग्य है महाराज ! आप क्या कहते हैं ?

राव—मैं ठीक कहता हूँ । हंसा मेवाड़ की रानी तो होगी, पर एक वृद्ध के साथ उसके दाम्पत्य-जीवन की कल्पना भी करती हो ? नीरस और शुष्क ! मैं जान-बूझकर अपनी प्रिय पुत्री को दुख के अथाह सागर में कैसे धकेल दूँ ? रणमल भी तो.....

रानी—दाम्पत्य-जीवन महाराज ! क्या हमारा दाम्पत्य-जीवन दुख-मय रहा है ? । फर मेरे विवाह के समय आप की आयु कितनी थी ? क्षत्राणियाँ पति की सेवा करना खूब जानती हैं । वे चाहें तो नरक ऐसे दाम्पत्य-जीवन को स्वर्ग बना दें । तो क्या मेरी

लड़की क्षत्राणी नहीं, उसने क्षत्राणी का दूध नहीं पिया ? रही रणमल की बात, वह तो ईर्ष्या से जल उठा होगा। उसकी सौतेली बहिन मेवाड़ की सम्राज्ञी हो और वह उसका तुच्छ सेवक ! महाराव मेरी लड़की जिससे मेवाड़ की सम्राज्ञी बने, ऐसा ही कीजिए।

राव—यदि उसके पुत्र को सिंहासन का अधिकार न हुआ तो हंसाबाई जैसे सम्राज्ञी हुई, न हुई।

दासी का प्रवेश

दासी—राज-मन्त्री ने यह चिट्ठी भेजी है और कहा है कि दूत इसे अभी चित्तौड़ से लाया है।

राव चूड़ावत चिट्ठी लेकर पढ़ते हैं

राव—लो युवराज की चिट्ठी भी आ गई।

रानी—क्या लिखा है ?

राव—अपने पिता के लिए हंसाबाई के हाथ की याचना की है।

रानी—महाराव आप शर्त लगा दें कि यदि युवराज अपने सिंहासन का अधिकार छोड़ने को तैयार हों तो यह विवाह हो सकता है।

राव—यह तो लिखा जा सकता है, किन्तु आश्वासन क्या है रानी ? क्या भरोसा, विवाह के पश्चात् वह फिर अपना अधिकार जमा लें।

रानी—महाराव ! युवराज चंड सारे राजपूताने में अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा के लिए प्रसिद्ध हैं। आप उनसे कहें कि भगवान एकलिंग के सामने शपथ लेकर वे प्रण करें कि राज्य का अधिकार हंसाबाई के पुत्र के लिए सुचित रहेगा।

राव—मैं लिख दूँगा, किन्तु रानी भली-भाँति सोच लो।

रानी—मैंने सोच लिया महाराव ! मैं अधिकार की पुजारिन हूँ। मेरी हंसा समस्त मेवाड़ की रानी होगी। इस बात की कल्पना ही से मुझ पर प्रसन्नता का उन्माद छाया जाता है। महाराव ! मैं युवराज से भी इसीलिए नाता करना चाहती थी। अब यदि वह तैयार नहीं तो महाराणा लक्ष्मि सिंह ही सही। मैं हंसा को किसी साधारण जागीरदार की पत्नी बनते नहीं देखना चाहती। मैं उसे समस्त मेवाड़ पर शासन करते देखना चाहती हूँ। आप शर्त लिख भेजिए।

राव—(चलते हुए) कौन कहता है मैं राज्य करता हूँ। राज्य तो तुम करती हो। मैं तो तुम्हारे हाथों में खिलौना मात्र हूँ।

प्रस्थान

रानी—मेरी लड़की मेवाड़ की रानी होगी और तुम्हारा लड़का, बड़ी रानी ! उसका दास।

प्रसन्नता के मारे गदेलों में धँस जाती है

पट-परिवर्तन

६

मंडोवर का उपवन

हंसाबाई अपनी सखियों के साथ
सब खेलती और गाती हैं ।

आज खुशी की घड़ियाँ प्यारी

ऊषा कुंकुम रोली लायी

नभ-पथ में फैलाती आयी

कण-कण में है मस्ती छायी

फूली है मन की फुलवारी

आज खुशी की घड़ियाँ प्यारी

कुंज-कुंज में कोयल बोली

मन में मानो मिसरी घोली

तुम क्यों चुप बैठी हो भोली ?

तुम पर तो सुन्दरता वारी

आज खुशी की घड़ियाँ प्यारी

एक वृक्ष के नीचे बैठती हैं ।

एक सखी—राजकुमारी, आज तो तुम अत्यन्त प्रसन्न दिखायी
देती हो । तुम्हारा मुख खिला-खिला पड़ता है और अंग-अंग
से जैसे उल्लास फूट रहा है ।

हंसाबाई—सच, ही आज मैं प्रसन्न हूँ, और मेरे

साथ यह उद्यान, यह फूल, यह तितलियाँ सब प्रसन्न हैं। बालारुण अपनी स्वर्ण-स्मित से इस विश्व के कण-कण में मुसकानों का संचार कर रहा है। सखियो ! एक बार फिर कोई उल्लास का गीत गाओ।

सखियां—हम थक गयी हैं, आओ अब चलें, आराम करें।

हंसाबाई—इतनी जल्दी थक गयी तुम, तुम सब, तुम्हें क्या हो गया है, तुम्हारी सब स्फूर्ति कहाँ गयी ?

एक सखी—हमारी स्फूर्ति तो कहीं नहीं गयी, हाँ हम में नयी स्फूर्ति नहीं आयी।

हंसाबाई—मुझ में कहाँ से नयी स्फूर्ति आ गयी ?

दूसरी सखी—तुम में स्फूर्ति न आयेगी तो और किस में आयगी……

तीसरी सखी—तुम मेवाड़ की भावी सम्राज्ञी होगी और राजपूताने के वीर-शिरोमणि युवराज चंड को पत्नी, तुम क्यों न प्रसन्नता से नव-स्फूर्ति पाओगी।

हंसाबाई—सच ही आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ, समस्त राजपूताने में जिस महान आत्मा की पूजा होती है, उसी के चरणों की दासी बनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा। तुम कुछ गाओ सखियो, कुछ गाओ !

सखियां—आओ अब घर चलें !

हंसाबाई—(तनिक उदास होकर) सखियो, कुछ गाओ, फिर मैं तुम्हें परेशान करने न आऊँगी, फिर तुम आगम ही करोगी, तुम्हें सताने वाली हंसा तुम्हारे पास न रहेगी ।

पहली सखी—राजकुमारी, तुम हमें भूल जाओगी ।

दूसरी सखी—तुम्हें हमारी याद भी न आयेगी ।

तीसरी सखी—और हम तुम्हें, तुम्हारे सुन्दर चाँद से मुखड़े को, तुम्हारी मुसकान को, तुम्हारी मीठी बातों को स्मरण करके रोया करेंगी ।

हंसाबाई—मैं तुम्हें भूल जाऊँगी ! (निश्वास छोड़ कर) ये सुख के दिन—स्वच्छन्द, स्वतन्त्र, बन्धनरहित, दायित्व की कैद से आजाद दिन—भुलाये जा सकते हैं कहीं ? यह नीलाकाश, यह वाटिका और सब खेल जो इस विशाल आकाश के नीचे इस सुन्दर वाटिका में हम ने खेले हैं, भुलाये जा सकते हैं कहीं ? इनकी याद सदैव मेरे हृदय में टीस जगाया करेगी ।

सखियां—तुम उदास हो गयी राजकुमारी, यह विछोह, यह वियोग ! हम हँसती हैं, किन्तु हमारे दिल से पूछो ! लो आओ कुछ और देर खेलें ।

हंसाबाई—नहीं तुम खेलो, तुम गाओ, मैं वहाँ वृक्ष के नीचे बैठी सुनती हूँ ।

सब गाती हैं ।

गाना

आओ जी, कोई गाना गाओ
 आओ जी, कोई सुनो सुनाओ
 चार दिवस जी भर कर खेलो
 जीवन से जीवन कुछ लेलो
 फिर तो है उड़ जाना जी
 कोई गाना गाओ
 आओ जी, कोई सुनो सुनाओ
 यह हँसना गाना फिर दुर्लभ
 रोना और रुलाना दुर्लभ
 होगा और ज़माना जी
 कोई गाना गाओ
 आओ जी कोई सुनो सुनाओ
 इस घर में है राज हमारा
 इस घर में सुख-साज हमारा
 उस घर कौन ठिकाना जी
 कोई गाना गाओ
 आओ जी, कोई सुनो सुनाओ
 सब ठहाका मार कर हँसती हैं ।

एक—क्यों कैसा गाना गाया, राजकुमारी ? है न समय का !

फिर ठहाके लगते हैं ।

घबराई हुई मालती प्रवेश करती है ।

साँस फूल रहा है, सब आश्चर्य से

उसकी ओर ताकती हैं ।

पहली सखी—मालती, क्या है. घबरायी हुई क्यों हो ?

मालती—(जैसे अपने आप) आशाओं पर पानी फिर गया,
कल्पनाओं की बेल हरी भी न हुई थी कि मुरझा गयी !

दीर्घ-निश्वास छोड़ती है ।

पहली सखी—(पास आकर, उसे कंधे से झुकभोर कर) मालती,
मालती !

मालती—युवराज चंड से राजकुमारो का विवाह न होगा ?

सब—युवराज चंड से न होगा ?

हंसाबाई अवाक्, मुख की आकृति फीकी ।

पहली सखी—तो और किस से होगा ?

मालती—लाखा राणा से ।

सब—लाखा राणा से, बूढ़े लाखा राणा से ?

सब स्तब्ध मालती की ओर देखती हैं । हंसाबाई बैठे बैठे

शिथिल सी, अचेत सी होकर लेट जाती है ।

सब उस की ओर भागती हैं ।

पहली सखी—(चीख कर) मालती ! केवड़ा लाओ, केवड़ा
लाओ !

तेजी से मालती का प्रस्थान

पट-परिवर्तन

पहाड़ी कन्दरा में शिव-मन्दिर के बाहर

भोटिंग भट्ट और धनेश्वर राय

भोटिंग—क्या कहा ? युवराज ने शपथ लेली, सिंहासन का अधिकार छोड़ने की शपथ ले ली !

धनेश्वर—हाँ, उन्होंने समस्त दरबारियों के सामने भगवान एकलिंग के मन्दिर में जाकर शपथ लेली ।

भोटिंग—उन्हें किसी ने रोका नहीं ?

धनेश्वर—सब ने रोका, किन्तु अपने प्रण पर वह अटल खड़े रहे ।

भोटिंग—महाराणा ?

धनेश्वर—उन्हें युवराज के इस हठ पर क्रोध है, वे विवाह करेंगे दूत मंडोवर जा चुका है !

भोटिंग—महारानी ?

धनेश्वर—वे व्यथित हैं !

भोटिंग—नागरिक ?

धनेश्वर—सब अप्रसन्न हैं, अनिष्ट की आशंका से सब भयभीत हैं ।

भोटिंग—(जैसे अपने से) चिनगारी पड़ गयी, चिनगारी पड़ गई, मेवाड़ की शान्ति नष्ट हो कर रहेगी ।

धनेश्वर—अच्छे लक्षण नहीं दिखायी देते !

भोटिंग—राजपूतों का पराना दम्भ, मिथ्या गर्व, झूठी मर्यादा !

धनेश्वर—पितृभक्ति !

भोटिंग—हाँ पितृभक्ति ! जिस से देश पर विपत्ति दूट पड़े ।

धनेश्वर—चाहे जो हो कीर्तिमानजी ! मैं तो युवराज की प्रतिज्ञा देख कर आश्चर्य-चकित रह गया ! कितना उल्लास था, कितना हर्ष था ? इतना त्याग और लेश मात्र भी चिन्ता नहीं !

भोटिंग— इसी को मूर्खता कहते हैं (विद्रूप से हँसकर) विधि न टलेगी । मेवाड़ की शान्ति पर जो चिनगारी डोडियों के आगमन के रूप में पड़ी थी, वह इस शपथ से सुलग उठी है और महाराणा के विवाह पर ज्वाला बन जायेगी । फिर कौन जाने इस ज्वाला में कौन कौन भस्म हो ?

धनेश्वर—और कीर्तिमान जी ! आप.....

भोटिंग—मैं अपनी प्रार्थना जारी रखूँगा । राणा ने हमें जागीरें दी हैं, हमें सुख दिया है, आराम दिया है, उन पर विपत्ति आते देख कर हम कैसे पीछे हट जायँ ।

धनेश्वर—आप धन्य हैं !

भोटिंग—मेरी जागीर का ध्यान रखना, मेरे बाल बच्चों का ध्यान रखना ! मैं उपाय करूँगा । भगवान एकलिंग राजकुल को सुमति दें, विधि का प्रहार टल जाय !

वापस कन्दरा में जाते हैं, धनेश्वर राय कुछ

ब्रह्म खड़े रहते हैं, फिर धीरे-धीरे चलते है ।

पट-परिवर्तन

महलों में मार्ग के किनारे की वाटिका

युवराज चंड और राघव

चंड—क्यों भाई तुम्हें मेरी प्रतिज्ञा उचित नहीं जान पड़ी ?

राघव—नहीं भाई उचित क्यों नहीं जान पड़ी । संकुचित स्वार्थप्रियता के दृष्टि-कोण से, तुम्हारा यह व्रत, यह त्याग, चाहे मूर्खता और राजनीतिक-अदूरदर्शिता का ही द्योतक समझा जाय और कदाचित् स्वार्थी, जीवन को ऐश्वर्य के तुला में तोलने वाले उस पर हँसें, पर यदि मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान राम का, केवल अपने कुल की मर्यादा पालने के निमित्त राजपाट छोड़कर चौदह लम्बे वर्षों के लिए जंगलों की खाक छानना सराहनीय है, तो अपने प्रण की रक्षा के लिए तुम्हारा यह व्रत भी कम प्रशंसनीय नहीं और जिस भाँति उनका नाम इतिहास में उज्ज्वल अक्षरों से लिखा गया, इसी तरह तुम्हारा भी लिखा जायगा । आने वाली नसलें तुम्हारा नाम लेते ही गर्व से फूल उठा करेंगी ।

चंड—किन्तु, भाई तुम प्रसन्न दिखायी नहीं देते । जब मैं भगवान एकलिंग के मन्दिर में शपथ ले रहा था तो मैंने देखा—तुम्हारा मुँह सूखा हुआ है और तुम्हारे हृदय में न जाने कैसे विचार उद्वेलित

होकर तुम्हारे मुख पर प्रतिबिम्बित हो रहे हैं ।

राघव—हाँ भाई ! मुझे खुशी नहीं हुई ।

चंड—क्यों ?

राघव—इसलिए कि मुझे पण्डितवर कीर्तिमान की भविष्यद्वाणी स्मरण हो आयी । वे अनिष्ट की आशंका करते थे और वह हमारे सामने आ गया । आपके सिंहासन-त्याग और भविष्य में किसी बच्चे के हाथों उसके संचालन से क्या परिणाम निकल सकते हैं, उसे हम अभी से क्या जान सकेंगे ? पिताजी वृद्ध हो गये हैं । इस आयु में उनका विवाह हितकर होगा या नहीं, यह कौन कह सकता है ? निश्चित बातें आपके व्रत से अनिश्चित हो गयी हैं । मेवाड़ का भाग्य संशय के गर्त में जा पड़ा है ।

, चंड—लेकिन पिता जी का वाक्य ! उससे उनकी.....

राघव—विवाह के प्रति अभिलाषा प्रकट होती थी, आप यही कहना चाहते हैं ! और उनकी तनिक सी इच्छा के लिए आपने यह महान-व्रत धारण कर लिया । किन्तु इसका मेवाड़ के भविष्य पर क्या प्रभाव पड़ सकता है, उसकी जनता को किन विपत्तियों का सामना करना पड़ सकता है, इस बात को सोचकर मेरा हृदय उद्विग्न हो जाता है । पितामह भीष्म ने अपने पिता की इच्छा के लिए महान व्रत तो धारण किया, किन्तु उससे हस्तिनापुर की जनता पर कौन सी आपत्तियों के पहाड़ टूटे और कितने व्यक्तियों के

जीवन-उद्यान पतझड़ का शिकार हो गये, यही सोच कर मैं बेचैन हो जाता हूँ ।

युवराज उद्भ्रान्त से एक स्थान पर बैठ जाते हैं ।

राघव—मुझे आप आज्ञा देंगे । मुझे नगर में कई स्थानों पर जाना है ।

प्रणाम करके प्रस्थान

युवराज उठ कर घूमते हैं, फिर रुकते हैं ।

अपने आप—कर्तव्य ! तेरा पथ इतना कठिन है ?

निश्वास छोड़ते हैं और उद्धिगता से घूमते हैं ।

फिर वहीं बैठ जाते हैं । रानी प्रवेश करती है ।

अपने आप में खोई हुई तेज़ां से जा रही है ।

चंड—माँ !

रानी—ओह ! तुम यहाँ बैठे हो, मैंने तुम्हें नहीं देखा ।

चंड—माँ यह तुम्हारी कैसी दशा है ।

रानी—कुछ भी तो नहीं, बेटा !

चंड—यह उड़ा-उड़ा चेहरा, यह बिखरे-बिखरे बाल, यह फटी-फटी आँखें, माँ—माँ !

रानी—बेटा !

चंड—तुम्हें मेरे प्रतिज्ञा लेने में बहुत दुख हुआ ।

रानी—नहीं बेटा ! तुम ने ठीक किया, तुम ने मेरी शिक्षा को चरितार्थ किया । मैं—मेरी चिन्ता न करो, अपने कर्तव्य पर डटे

रहो, मुझे कोई दुख नहीं। जो प्रतिज्ञा की है, (कंठ भर आता है।) उसका जीवन भर पालन करो, उससे गिर गये तो मुझे सुख में भी दुख प्रतीत होगा और उस पर डटे रहे तो मैं दुख को भी सुख करके मानूँगी।

तेज़ी से अपने रास्ते चली जाती है।

युवराज फिर उठ कर घूमते हैं।

चंड—(अपने आप) सब दुखी हैं, सब दुखी हैं। शोक-सागर में डूबे हुए हैं।

हेमवती अपने ध्यान में मग्न आ रही है।

दोनों टकरा जाते हैं। युवराज उसे

कंधों से थाम लेते हैं।

चंड—हेम ! तुम भी दुखी हो, तुम्हें भी मेरी इस प्रतिज्ञा पर दुख है, तुम भी मुझे बुरा समझती हो ?

हेमवती—बुरा ! भाई, कैसी बातें करते हो, मुझे अपने इस सत्यव्रती भाई पर गर्व है। मैं तो प्रार्थना करती हूँ कि हर राजपूतनी को तुम जैसा वीर भाई मिले !

चंड—तुम्हें दुख नहीं हुआ वहिन ?

हेमवती—दुख, दुख तो भाई मन की बात है। हम उसी को दुख मानते हैं, जिसमें हमें दुख महसूस होता है, चाहे लोग हमें कितना ही सुखी समझें। अभी, अपने आगमन के बाद इन दिनों मैंने तुम्हें सच्चे राजपूत के जिस रूप में देखा है, उसकी मैंने कल्पना भी न की थी। मैंने तुम्हें जैसे समझा था, उससे कहीं अधिक कर्तव्य-परायण और दृढ़-प्रतिज्ञा पाया।

चंड—किन्तु माँ !

हेमवती—माँ—उनकी न पूछो। वह अपने दुख को दबाती अवश्य हैं, परन्तु उनका दुख, उनके अन्तर की वेदना, जैसे उनके प्रत्येक अंग से फूटी पड़ती है। सारी रात उन्होंने घूम-घूम कर धिता दी। तुम नहीं समझते। जिसका पुत्र राज्य का अधिकारी होता हुआ भी उसे त्यागने का प्रण कर ले, जिसको अपना पति हाथों से निकलता हुआ प्रतीत हो, जिसको अपने समस्त अधिकार छिनते हुए दिखाई दें और फिर जिसकी आयु बुढ़ापे के पथ पर शीघ्रता से अग्रसर हो, उसके दुख का हम तुम अनुमान नहीं कर सकते, परन्तु वे क्षत्राणी हैं, कर्तव्य के पथ पर अपने दुखों को भेलना भली-भाँति जानती हैं।

चलने को उद्यत होती है।

चंड—बहिन, मैं कृतज्ञ हुआ। मैं तुम्हें किस तरह धन्यवाद दूँ ? तुम आदर्श बहिन हो। यदि तुम जैसी बहिनें सबके हों, तो कोई कायर न हो, कर्तव्य-पथ से हट जाने वाला न हो। मैं धन्य हूँ, कि मुझे तुम जैसी बहिन मिली है। मैं व्यथित था; दुखी था। मैं समझता था मेरे कर्तव्य-पालन ने सबको संकट में डाल दिया है। अब कोई राम नहीं। दुख आते हैं आये ! कष्ट आते हैं आये !! तुम देखोगी मैं पत्थर बन जाऊँगा, चट्टान बन जाऊँगा। तुम्हारे जैसी बहिन पाकर भाई कर्तव्य के पथ से हट जायँ, कैसे हो सकता है ?

हेमवती—वीर भाई, यही ठीक है। तुम्हारी बहिन तुम से यही आशा रखती है। क्या राजपूतनियाँ अपने भाई-बेटों को सहर्ष युद्ध

में नहीं भेज देती? क्या उससे उन्हें दुख नहीं होता? होता तो है, पर कर्तव्य उन्हें बढ़ावा देता है। तो क्या केवल दुख के भय से, कर्तव्य के इस युद्ध में फाँदने से मैं तुम्हें रोकूँगी? चलो भाई! समस्त जीवन एक युद्ध है। इससे माँ, बाप, भाई, बहिन किसी का ध्यान न करो। कर्तव्य ही तुम्हारा साथी हो, प्रतिज्ञा ही तुम्हारी संगिनी हो।

पटाक्षेप

तृतीय अंक

१

दो ब्राह्मण विवाहोत्सव में पाई हुई गठबियाँ
सँभाले, बातें करते हुए प्रवेश करते हैं।

एक—आखिर महाराणा का विवाह हो गया।

दूसरी—हाँ, ऐसा उल्लास-हीन विवाह भी कभी न देखा होगा। ऐसा मालूम होता था, जैसे सब पकड़ कर विवाह में शामिल किये जा रहे हों। जैसे उन्हें उनकी इच्छा के विरुद्ध, खुशी में नहीं, ग़म में शामिल किया जा रहा हो।

पहला—सब हँसते थे, किन्तु किसी के चेहरे पर भी आन्तरिक प्रसन्नता का चिह्न न था—खोखले कहकहे, वास्तविक प्रसन्नता से रहित !

दूसरा—और खुशियाँ, बाजे, नाच, गाने ? जैसे बृद्ध की अर्थी के साथ ! यह विवाह था ? विवाह की नक़ल में भी इस से अधिक खुशी, इस से अधिक उल्लास होता।

पहला—सब के चेहरों पर व्यथा की एक गहरी छाप थी, किन्तु हँस रहे थे, जैसे दुख की सीमा पर मनुष्य हँस देता है, हृदय के दुख को छिपा कर।

दूसरा—कोई भी प्रसन्न नहीं, एक व्यक्ति भी प्रसन्न नहीं, वर-वधू भी नहीं।

पहला—हाँ, वर-वधू भी नहीं ।

दूसरा—(नेपथ्य की ओर देख कर) यह दीपमाला हो रही है ।
नगर पर छाये हुए दुख के गहरे अन्धकार को कृत्रिम प्रकाश से दूर किया जा रहा है ।

पहला—मालूम होता है विधि से मेवाड़ की सम्पन्नता और खुशी देखी नहीं गई और विवाह के रूप में उसने यह विपत्ति भेज दी ।

दूसरा—यह विवाह—युवराज ने इसी के लिए अपना अधिकार छोड़ दिया, राणा वृद्धावस्था में, युद्ध पर जाने के बदले नयी वधू ले आये और महारानी अधिकार-हीन होगई ।

पहला—चलो जी ! दान तो खूब मिला ।

दूसरा—हाँ ! दान तो खूब मिला ।

बाजों की आवाज़ आती है ।

पहला—तो यह बाजे बजने लगे ।

दूसरा—जैसे नगर पर छाया हुआ अवसाद मुखरित हो उठे ।

पहला—जैसे अंधेरे की भयावहता दूर करने के लिए कोई गाने लगे ।

बातें करते चले जाते हैं ।

पट-परिवर्तन

चित्तौड़ का नया राज-भवन

हंसाबाई और मालती

हंसाबाई—(जैसे अपने आप) यह और वह, दोनों दशाओं में कितना अन्तर है ? एक की कल्पना में सुख है, सुख में पुलक है, पुलक में शान्ति है । दूसरी के ध्यान में ही दुख है, दुख में पीड़ा है, पीड़ा में अशान्ति है । यदि युवराज नारियल स्वीकार कर लेते, यदि.....

आकुलता से घूमती है ।

मालती—महारानी ! जो हो चुका, हो चुका, अब उसकी चिन्ता करने से लाभ ?

हंसाबाई—(निराशा से) हाँ ! कुछ लाभ नहीं ? मैं स्वयं सोचती हूँ मालती, मुझे क्या हो गया है ? मस्तिष्क में क्यों हलचल मची हुई है, रोम-रोम में क्यों आग धधका करती है ? चंड ! उहँ, उनके साथ जीवन की कल्पना ही क्यों यह तो पाप है । जो बीत गया, बीत गया, अब अतीत की स्मृति से लाभ ? जो हाथ नहीं आ सकता उसकी इच्छा ही क्यों ? जीवन की पुस्तक के पिछले पृष्ठ फाड़ डालूँगी । अब तो नये अध्याय का आरम्भ होगा ।

मालती—सतियों के लिए यही उचित है महारानी ! सच्ची क्षत्राणी के लिए पति की सेवा ही सर्वस्व है । आज इतने दिनों से आप किसी से बोली नहीं । आपने किसी से बात तक नहीं की । कुमार आ आ कर मुड़ गये, स्वयं रणमल आये और चले गये ।

हंसाबाई—(जैसे अपने आप) तैयार करना होगा, अपने आप को कर्तव्य के पथ पर चलने के लिए तैयार करना होगा । हृदय दुखी हो, पर मुख प्रसन्न दिखाई दे, रोने की इच्छा हो पर अधर हँस पड़ें, रिक्त हृदय अनुराग सीख जाय ।

दासी का प्रवेश

दासी—महाराणा आ रहे हैं ।

प्रस्थान

मालती—ठहरो मैं भी आती हूँ ।

प्रस्थान

हंसाबाई—(अपने आप) आओ नाथ ! तुम आज देखोगे कि मैं कितनी बदल गई हूँ । आज अचानक मैं चंचल और उच्छृंखल हंसा से सौम्य और गम्भीर सम्राज्ञी हो गई हूँ ।

महाराणा लक्षसिंह का प्रवेश

हंसाबाई उनका अभिवादन करती है ।

राणा आकर उस के पास बैठ जाते हैं ।

लक्षसिंह—कहो आज जी कैसा है ? वैद्य कहते हैं कि यहाँ की जल-वायु तुम्हारे अनुकूल नहीं हुई । कहो तो हम

चित्तौड़ से बाहर किसी अच्छे स्थान पर चले जायें ।

हंसाबाई—आप के चरणों में, नाथ ! मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं । दिल कुछ उदास अवश्य था, परन्तु अब तो धीरे-धीरे मैं यहाँ से अभ्यस्त हो रही हूँ ।

लक्ष्मि—(प्रसन्नता से) युवराज तुम्हें प्रणाम करना चाहता था ।

हंसाबाई—मैं आज उन से मिलूँगी ।

लक्ष्मि—कुमार राघव अपनी नयी माँ को देखने के लिए उत्सुक था ।

हंसाबाई—आप उन्हें बुला भेजिए ।

लक्ष्मि—मैं बहुत प्रसन्न हुआ, (हंसाबाई के कंधे पर हाथ रखते हैं, स्वर तनिक कण्ठ हो जाता है) वास्तव में हंसा ! मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है, मैं तुम्हें अपने साथ नरक में घसीट लाया हूँ । तुम यहाँ आकर सुखी न हो सकीं ।

हंसाबाई—नहीं नाथ ! मैं तो आपकी अपार कृपा और प्रेम से बहुत सुखी हूँ ।

लक्ष्मि—(व्यंग्य से हँस कर) वृद्ध का प्रेम और कृपा—पतझड़, शिशिर, गाम्भीर्य ! खैर मैं प्रयास करूँगा प्रिये, यदि मुझ से तुम्हें सुख न मिले तो दुख भी न हो । तुम्हारी कोई भी अभिलाषा पूरी होने से न रहेगी । मैं अभाव को श्रद्धा और भक्ति से पूरा कर दूँगा ।

हंसाबाई—आप कैसी बातें करते हैं महाराज ! चरणों की धूल को आप सिर पर स्थान दे रहे हैं । वह तो वहीं प्रसन्न है ।

लक्ष्मि—हंसा !

हंसाबाई—महाराज !

लक्ष्मि—(गद्गद होकर) तुम सुखी हो ?

हंसाबाई—बिलकुल । (मुसकाती है ।)

लक्ष्मि—तो मुझसे अधिक कौन प्रसन्न है ? मेरी सबसे बड़ी चिन्ता दूर हो गई । मैं राज्य के कामों में अब अधिक ध्यान दे सकूँगा । आज तक मैं अपने आप में न था, पश्चात्ताप का बोझ मेरा गला दबा रहा था, आज तुमने मुझे जिला दिया ।

हंसाबाई—(चुप रहती है ।)

लक्ष्मि—कहो, तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं ?

हंसाबाई—दासी हर प्रकार से सुखी है ।

लक्ष्मि—तुम इस महल में उदास रहती होगी, मैं सोचता हूँ—बड़ी रानी से कहकर भारमली को तुम्हारे पास भिजवा दूँ ।

हंसाबाई—भारमली कौन ?

लक्ष्मि—मेवाड़ की प्रसिद्ध गायिका ।

हंसाबाई—मैं इस कृपा के लिए अनुगृहीत हूँ ।

राणा उठते हैं ।

लक्ष्मि—मैं अभी जाकर उसे भेजता हूँ और युवराज से भी कहता हूँ कि वह अपनी माँ की सेवा में उपस्थित होकर आशीर्वाद ले।

प्रस्थान

हंसाबाई—माँ, (व्यंग से हँसती है।) विधि की कैसी विडम्बना है! अब युवराज मुझे माँ कहेंगे, पर नहीं, मैं कुछ न सोचूँगी, मैं अपने आप को व्यस्त रखूँगी, मैं भूलने का प्रयास करूँगी।

मालती प्रवेश करती है।

हंसाबाई—देखो मालती, मैं आज बदल गई हूँ, अब तुम यहाँ किसी दुखित, व्यथित, अपने भाग्य को कोसने वाली हंसा को न देखोगी, तुम्हें अब बदली हुई हंसा दिखाई देगी।

मालती—यही आप का कर्तव्य है। इसी मार्ग में सुख और शान्ति है। जीवन तो समझौते का दूसरा नाम है महारानी! इसमें पग-पग पर परिस्थितियों से समझौता करना पड़ता है और यदि अपने आप को उनके अनुकूल न बनाया जाय तो दुख, अवसाद के सिवा कुछ हाथ नहीं आता।

दासी प्रवेश करती है।

—युवराज आ रहे हैं।

फिर वापिस चली जाती है।

मालती भी जाना चाहती है।

हंसाबाई—मालती, तुम मेरे पास रहो, तुम मेरे पास रहो,

मेरा दिल धड़क रहा है, मेरा गला सूख रहा है ।

युवराज विनम्र भाव से प्रवेश करते हैं ।

युवराज—प्रणाम करता हूँ माता !

दोनों हाथ जोड़ते हैं ।

हंसाबाई नहीं बोलती, आँखें नीची किये काँपती है ।

युवराज—माता आशीर्वाद दो ! तुम्हारा पुत्र तुम्हारे सामने खड़ा है, आशीर्वाद दो कि वह तुम्हारी सेवा में तत्पर रह सके, अपने कर्तव्य से विचलित न हो ।

हंसाबाई काँपते काँपते बैठ जाती है ।

युवराज—माँ, पुत्र से डर कैसा ? वह तो तुम्हारा दास है, तुम्हारा तुच्छ सेवक है ।

हंसाबाई का काँपना बन्द हो जाता है ।

वह एक क्षण आँख उठा कर देखती है

फिर आँखें नीची कर लेती है ।

हंसाबाई—युवराज !

आगे नहीं बोल सकती, केवल काँपती है ।

युवराज—युवराज नहीं, माँ ! पुत्र कहो, मैं तो केवल अपनी माँ के चरणों में प्रणाम करने आया हूँ और कहने आया हूँ कि आप इस तुच्छ को सदैव अपना सेवक समझें ।

प्रणाम करके चले जाते हैं ।

हंसाबाई का रंग पीला पड़ जाता है,

और वह वहीं लेट जाती है ।

मालती—(चीख कर) कोई है, कोई है ।

दासियाँ भागी आती हैं ।

मालती—महारानी की तबीयत ठीक नहीं, तुम पंखा करो, मैं केवड़ा आदि लाऊँ ।

पट-परिवर्तन

रानी हंसाबाई के महल के पीछे उद्यान
वाटिका की ओर बढ़ा हुआ चबूतरा दिखाई देता है ।
बड़ी रानी, सुकेशी की अँगुली पकड़े, प्रवेश करती है ।

सुकेशी—इधर अंधेरा है, मुझे डर लगता है, मैं न जाऊँगी ।

रानी—नहीं, नहीं, वहाँ चल के बैठेंगे, तू सुकेशी है न,
मेरी बच्ची है न, बड़ी अच्छी है न, देख यहाँ कोई अंधेरा
नहीं, आकाश में चाँद कैसा चमक रहा है, और तारे नन्हें
नन्हें दियो की भाँति, अंधेरे को दूर करने में उसकी सहायता
कर रहे हैं । चल तुझे इन की बातें सुनाऊँ ।

सुकेशी—मुझे नींद आ रही है, मैं सोऊँगी ।

रानी—अभी से सो जाओगी, आज तक कभी इतनी
जल्दी नहीं सोई । छोटी माँ के पास इस समय तुम खेला
करती हो ।

सुकेशी—मुझे छोड़ दो, मैं छोटी माँ के पास जाऊँगी, मैं
वहाँ खेलूँगी ।

रानी—हाँ हाँ, खेलना, मैं तुम्हें बड़ी सुन्दर और विचित्र
कहानी सुनाऊँगी ।

सुकेशी—कहानी ?

रानी—हाँ, हाँ, बड़ी सुन्दर कहानी !

सुकेशी—धाय मुझे बड़ी अच्छी कहानियाँ सुनाती है ।

रानी—धाय से भी अच्छी कहानी सुनाऊँगी ।

सुकेशी—परियों की कहानी ?

रानी—परियों और देवों की कहानी !

वृक्ष की छाया में जाती है ।

रानी—देख, यहाँ बैठ, मेरे पास मेरी गोद में और मैं यहाँ गिरे हुए वृक्ष के तने पर बैठती हूँ, (जैसे अपने आप) कितनी बार मैं यहीं आँधरे में आकर बैठी हूँ ! कितनी रातें मैंने यहाँ जाग कर काट दी हैं !!

हंसाबाई के कमरे में प्रकाश होता है ।

सुकेशी—माँ, छोटी माँ.....

रानी—हाँ, छोटी माँ, वह अपने कमरे में आ गई हैं, वह तुम्हें प्यार करती हैं ?

सुकेशी—करती हैं ।

रानी—और राणा जी ?

सुकेशी—करते हैं, नहीं, अब नहीं करते, कभी-कभी करते हैं ।

रानी—सुकेशी !

सुकेशी—हाँ माँ !

रानी—जब वे इकट्ठे होते हैं तो क्या बातें करते हैं ?

सुकेशी—कहते हैं इसका विवाह बड़ी धूम-धाम से होगा ।

माँ, मेरा विवाह कब होगा ?

रानी—जब तू बड़ी हो जायगी ।

सुकेशी—राजकुमार से होगा न माँ ?

रानी—हाँ राजकुमार से ।

सुकेशी—माँ ! मैं तो तुम से विवाह करूँगी ।

रानी—दुर पगली, कभी स्त्रियाँ भी स्त्रियों से विवाह करती हैं ?
सुकेशी !

सुकेशी—हाँ माँ ।

रानी—कभी वे मेरे सम्बन्ध में भी बातें करते हैं ?

सुकेशी—नहीं, वे मेरे सम्बन्ध में ही बातें करते हैं ।

रानी—(शून्य में देखती हुई) मैं उतर गई हूँ, उनकी याद से
उतर गई हूँ, अपने शिखर से उतर गई हूँ ।

सुकेशी—माँ, सर्दी लग रही है ।

रानी—यह तो वसन्त की हवा है, तुम्हें अच्छी नहीं
लगती ?

सुकेशी—नहीं माँ, मुझे ठंड लगती है । तुम्हें कैसी लगती है
माँ ? तुम्हें यह अच्छी लगती है ?

रानी—मुझे भी अच्छी नहीं लगती । वसन्त की हवा, पतझड़
की बयार मेरे लिए अब इन दोनों में कोई अन्तर नहीं, सब कुछ
एक सा बीत रहा है, एक रस और एक रंग !

सुकेशी—(चुप रहती है ।)

रानी—सुकेशी !

सुकेशी—हाँ माँ !

रानी—वे कभी रूठते नहीं ?

सुकेशी—वे प्रसन्न रहते हैं, सदैव प्रसन्न रहते हैं, कभी-कभी मुझे देख कर हँस पड़ते हैं ।

रानी—छोटी माँ तुम्हें जाने को नहीं कहती ?

सुकेशी—नहीं, वे डरती हैं ।

रानी—डरती हैं ?

सुकेशी—जब मैं जाना चाहती हूँ, तो वे कहती हैं, न जाओ, न जाओ ।

रानी—और राणा जी, वे कुछ नहीं कहते ?

सुकेशी—वे चुप रहते हैं ।

रानी—तुम छोटी माँ को देखना चाहती हो ?

सुकेशी—हाँ हाँ, मैं देखना चाहती हूँ ।

रानी—मैं तुम्हें अपने कन्धों पर उठा लूँगी ।

सुकेशी—न, मुझे डर लगता है, मैं गिर पड़ूँगी ।

रानी—नहीं, मैं तुम्हें न गिरने दूँगी, मैं इस वृक्ष के तने पर खड़ी हो जाऊँगी और तुम मेरे कन्धों पर चढ़ कर देखना ।

रानी वृक्ष के सहारे तने पर खड़ी होती है, सुकेशी

उसके कन्धे पर चढ़ती है, रानी काँपती है ।

सुकेशी—अहा, हा, माँ ! मैं देख रही हूँ, छोटी माँ को देख रही हूँ ।

रानी—अकेली हैं वे ?

सुकेशी—नहीं, पिता जी भी हैं ।

रानी—(काँपते स्वर में) क्या कर रहे हैं ?

सुकेशी—छोटी माँ को देख रहे हैं ।

रानी—(और काँपते स्वर में) और छोटी माँ ?

सुकेशी—वे दीवार की ओर देख रही हैं ।

रानी—(और भी काँपते स्वर में) दूर बैठे हैं ?

सुकेशी—नहीं, समीप बैठे हैं ।

रानी—उतर आओ, उतर आओ, मैं थक गई हूँ, मैं काँप रही हूँ ।

सुकेशी—नहीं माँ, देखो पिता जी……ओह माँ, तुम काँप रही हो ? मुझे उतार दो, मुझे उतार दो !

रानी सुकेशी को उतार देती है ।

रानी—तुम्हारे पिता जी क्या कर रहे थे ।

सुकेशी माँ का मस्तक घूमती है ।

रानी दीर्घ निश्वास छोड़ती है ।

सुकेशी—माँ ! अब वह हमारे महल में क्यों नहीं आते ?

रानी—(हँस कर) अब उन्हें छोटी माँ ने बन्दी बना लिया है । (दीर्घ निश्वास छोड़ती हुई) वह देखो, हेमलता तुम्हें ढूँढ़ती आ रही है । चलो चलें ।

सुकेशी की अँगुली पकड़े धीरे-धीरे चली जाती है ।

पट-परिवर्तन

हंसाबाई का भवन
रानी और युवराज चंड

हंसाबाई—मैंने तुम्हें क्यों बुलाया है युवराज, मालूम है ?

चंड—नहीं माता !

हंसाबाई—उस दिन मैं तुम से कोई बात न कर सकी । कब से मेरे हृदय में तुम्हें देखने की, तुम से बात करने की लालसा थी ! और तुम आये तो मैं देख तक न सकी, बात न कर सकी । आज मैंने तुम्हें इसीलिए बुलाया है ।

चंड—मैं उपस्थित हूँ माँ !

हंसाबाई—युवराज !

चंड—कहो माँ !

हंसाबाई—मुझे माँ न कहो युवराज !

चंड—और क्या कहूँ ?

हंसाबाई—मेरा नाम लेकर पुकारो ।

चंड—यह कैसे हो सकता है ?

हंसाबाई—पुकारने से ! तुम धरती में निगाहें गाड़े क्यों खड़े हो, ऊपर निगाह क्यों नहीं उठाते, (मुसकराती है) क्या मैं ऐसी ही डर की वस्तु हूँ ?

चंड—सेवक की आँखें माँ के चरणों में ही अच्छी हैं ।

हंसाबाई—युवराज !

चंड की ठोड़ी पकड़ती है । आँखों में लालसा है ।

चंड—माँ !

आँखें लाल और भृकुटी तनी हुई है ।

रानी एक कदम पीछे हट जाती है ।

हंसाबाई—यह लाल लाल आँखें, यह तना तना चेहरा, तुम्हारा नहीं, मेरा होना चाहिए था युवराज ! तुम कहते होगे—हंसा पागल हो गयी है, वह चरित्र-हीन हो गयी है, पर युवराज क्यों, कभी सोचा ? तुम ही तो इसका कारण हो । जिसकी मूर्ति को मैंने इतने दिनों से हृदय-मन्दिर में बसा रखा था, उसी ने मेरी आशाओं की दुनिया बिगाड़ डाली और फिर यह लाल आँखें, यह तना हुआ चेहरा, यह उपेक्षा, यह घृणा ! इसीलिए न, कि मैं नारी हूँ और नारी तुम्हारे विचार में पुरुष की इच्छाओं की दासी मात्र है । उसका अपना व्यक्तित्व कुछ नहीं । जैसे पुरुष उसके भाग्य का विधान कर दे, वैसे ही उसे करना चाहिए, वैसे ही उसे रहना चाहिए ।

चंड—माँ !

हंसाबाई—मुझे माँ न कहो युवराज !

चंड—माँ ! मैंने अपना कर्तव्य-पालन किया था ।

हंसाबाई—और इस कर्तव्य की वेदी पर तुम ने बलि किस की दी ?

चंड—मेरे पास जो था, मेरा जो अधिकार था, वह मैंने छोड़ दिया। और मेरे पास रहा ही क्या है? जान है, समय आने पर मैं उसका भी मोह न करूँगा।

हंसाबाई—हाँ! तुम ने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया, किन्तु तुम्हें दूसरे के सर्वस्व को बलिदान करने का क्या अधिकार था?

चंड—माँ, तुम भूलती ।। कर्तव्य-पथ पर चलने वाले की दृष्टि सदैव उसके आदर्श पर रहती है। वह जो कर्तव्य समझता है वही करता है। पित्रा जी के वाक्य पर मैंने हृदय में तुम्हें माँ समझ लिया था, फिर जिसे माँ कह दिया उसे माँ कह दिया। यदि तुम किसी को पुत्र कह दो तो क्या फिर....नहीं, मैं वह शब्द कभी जिह्वा पर नहीं ला सकता। उन परिस्थितियों में मेरा जो कर्तव्य था वह मैंने पूरा किया माँ, इन परिस्थितियों में तुम्हारा जो कर्तव्य है वह तुम पूरा करो।

हंसाबाई—माँ नहीं, युवराज मुझे माँ न कहो।

दोनों हाथ चंड के कन्धों पर रख देती है।

चंड—(हाथ झटक कर) बस—अब वहीं खड़ी रहो! जो हाथ माँ के संकेत पर धरती को उलट सकते हैं, वह उसी माँ को अपने पथ से विचलित होते देख कर छुरी भी भोंक सकते हैं।

जाना चाहते हैं।

हंसाबाई—युवराज, युवराज, तुम्हें गर्व है, तुम अपमान कर सकते हो, मेवाड़ की रानी का अपमान कर सकते हो ? जानते हो इसका परिणाम क्या हो सकता है ?

चंड—(सुन कर) मेवाड़ की रानी ! मैं कहता हूँ, मेरी माँ, यदि संसार भर की सम्राज्ञी होकर भी ऐसा दुर्व्यवहार करती, तो मैं पुत्र होता हुआ उसका गला घोट देता । भाग्य बलवान है । जहाँ वह हमें रखता है, जिन परिस्थितियों में रखता है, उनमें अपने कर्तव्य को सामने रख कर हमें चलना चाहिए । भाग्य ने आप को माँ और मुझे पुत्र बना दिया । तो क्या हम इस पवित्र नाते को तोड़ देंगे ? क्या तुम क्षत्राणी न रहोगी, क्या मैं क्षत्री न रहूँगा ? माँ ! मेवाड़ की रानी को यह शोभा नहीं देता ।

प्रस्थान

हंसाबाई—नहीं, मैं मेवाड़ की रानी नहीं, मैं सम्राज्ञी नहीं । मैं केवल नारी हूँ और नारी के साथ पुरुष का ऐसा ही व्यवहार होना चाहिए ? क्या बिना सोचे समझे पुरुष को उसे अपने दम्भ, अपनी झूठी मर्यादा की वेदी पर चढ़ा देना चाहिए ? कर्तव्य, कर्तव्य—मैं देखूँगी तुम कर्तव्य के कितने पुजारी हो ।

उद्धिगता से घूमती है

दासी को आवाज़ देती है

—दासी !

दासी का प्रवेश

—मंडोवर कुमार से कहना, कल प्रातः मुझे मिलें ।

दासी का प्रस्थान

फिर घूमती है ।

पट-परिवर्तन

५

महलों में उपवन
श्वेत चबूतरा, चाँदनी रात
रणमल और चंड प्रवेश करते हैं।

चंड—इस जगह ?

रणमल—हाँ इसी जगह ! इस श्वेत चबूतरे पर, मौलिश्री के वृत्तों के नीचे, वह अपना मादक गीत गाती है और कुमार मुग्ध होकर सुना करते हैं।

चंड—राघव ?

रणमल—हाँ युवराज !

चंड—मैं समझा, मैं समझा, वह अब क्यों खोया खोया सा रहता है, क्यों अब दिन प्रतिदिन बेपरवाह सा होता जा रहा है, क्यों अब जनता के कामों में दिलचस्पी नहीं लेता ?

रणमल—इस सुन्दर गायिका ने.....

चंड—(जैसे अपने से) हाँ, इस सुन्दर गायिका ने.....

रणमल—उनको अपने आप में नहीं रखा।

चंड—(जैसे अपने से) यह तो मृत्यु है।

रणमल—क्या मृत्यु है युवराज ?

चंड—यह रूख का उन्माद ! जब यह कर्तव्य के पथ में रुकावट

बन जाता है, तो इससे मनुष्य का नैतिक पतन हो जाता है, उसकी नैतिक मृत्यु हो जाती है ।

रणमल—वे आ रहे हैं, हमें छिप जाना चाहिए ।

चंड—हाँ हमें छिप जाना चाहिए । (धीरे धीरे जैसे अपने आप) सो गया । राघव ! तू विवेक की आँखें बन्द करके सो गया । किंतु तुम्हें उठना होगा, मैं तुम्हें उठा कर दम लूँगा !

दोनों छिप जाते हैं ।

कुमार राघव और भारमली प्रवेश करते हैं ।

राघव—(लम्बी सांस लेकर) ओह ! यह कैसी ज्योत्स्ना है ?

भारमली—और उसमें यह धवल, श्वेत चबूतरा !

राघव—जैसे चाँदी के पानी में तैरता हुआ हंस ।

भारमली—मौलिश्री की मादक सुगन्ध !

राघव—और ठंडी हवा के झोंके ! ऐसे में तुम्हारा थरथराता हुआ मादक गीत !! भारमली, पागल हो जाता हूँ । अपने आपको भूल जाता हूँ । तुम जादू करती हो !

दोनों मौलिश्री की छाया में बैठते हैं ।

चाँद की किरणें छन कर दोनों पर पड़ती हैं ।

राघव—भारमली, गाओ ! मेरी आत्मा आकुल हो रही है । वही कलवाला गीत गाओ । वही गान—जो बेसुध कर दे, भुला दे, भूल और भविष्य को वर्तमान में लीन कर दे ।

भारमली—कुमार !

राघव—कहो ?

भारमली—तुम मेरा गाना सुनना चाहते हो ?

राघव—हाँ! मैं गाना सुनना चाहता हूँ, गाना ही सुनना चाहता हूँ भारमली ! यह मेरे सामने एक अभिनव संसार की रचना कर देता है । जिसमें गत नहीं, आगत नहीं वर्तमान है, विस्मरण है, भूल जाना है ।

भारमली — तुम केवल मेरा गाना ही सुनने आते हो ?

उसके कन्धे से सिर लगा देती है ।

कुमार चौंकते हैं, पर उठते नहीं ।

भारमली—कुमार !

राघव—(तन्मयता से उस के बालों को सुलभाते हुए)
भारमली !

भारमली -- तुम केवल मेरा गाना ही सुनने आते हो, मैं आज न गाऊँगी ।

राघव—(उसकी ओर मुग्ध आँख से देखते हुए) क्यों भारमली !

चंड वृक्ष के पीछे से निकल कर

सामने आते हैं ।

चंड—राघव !

दोनों चौंकते हैं ।

चंड—राघव !

राघव—(चुप)

चंड—राघव मैं क्या देखता हूँ—जिस ने अपना सर्वस्व जनता के अर्पण कर दिया हो, उस के लिए क्या यह उचित है।

राघव—(चुप)

चंड—जनता का प्रेम-पात्र बनने के लिए, भाई ! इस तुच्छ प्रेम को त्यागना होगा। उस विशाल, महान प्रेम के आगे, इस तुच्छ वासना-मय प्रेम के लिए कहाँ स्थान है ? राघव ! तुम ने जनता की सेवा का व्रत ही क्यों लिया ? जनता का सेवक, जनता का प्रेमी तो उदारता से प्रेम करना जानता है। वह एक का न होकर सब का हो जाता है और तुम अपने उस विशाल प्रेम को इतना संकुचित, इतना सीमित कर रहे हो ! उस उच्च पद से इतना नीचे गिर रहे हो !!

राघव—मुझे.....

चंड—तुम्हें यह सब कुछ छोड़ देना होगा, तुम्हें चित्तौड़ से बाहर चला जाना होगा, संयम सीख कर फिर आना होगा।

राघव—(आँखें धरती में गाढ़े हुए) मैं चला जाऊँगा भाई।

चंड—(भारमली की ओर देख कर) और भारमली ! पिताजी ने तुम्हें छीटी माँ के पास रहने की आज्ञा दी है, तुम कल से उधर रहना (राघव से) चलो राघव, (वृद्धों की ओर देखकर) आओ मंडोवर कुमार !

दोनों का प्रस्थान, रणमल भी घीरे से उनके साथ आ मिलता है।

भारमली की ओर कनखियों से देखता हुआ जाता है।

भारमली—(अपने आप) अच्छा तो राठौर ! यह तुम्हारा षड्यन्त्र है, परन्तु तुम भारमली को बाँध न सकोगे । वह जायगी, जहाँ कुमार जायगा । आकाश में, पाताल में, जल में, थल में वह अपनी आत्मा को ही ढूँढ़ेगी और तुम न पा सकोगे उसे राठौर !

तेजी से प्रस्थान

पट-परिवर्तन

चित्तौड़ का राज-प्रासाद

हंसाबाई और रणमल प्रवेश करते हैं ।

हंसाबाई—इस देश में भाई ! मुझे तुम से बढ़ कर और किस का सहारा है ? राणा राज-काज के कामों में अधिक दिलचस्पी नहीं लेते । वे तो नाम के राणा हैं, वास्तव में राज तो दोनों कुमार करते हैं ।

रणमल—बहिन, मुझ पर विश्वास करो तो.....

हंसाबाई—भाई पर विश्वास न करूँगी तो किस पर करूँगी । क्या हुआ यदि हम सौतेले बहिन भाई हैं । कहो क्या मैंने तुम से सदैव सगी बहिन का सा बर्ताव नहीं किया ? क्या मैं तुम्हें कान्हा से अधिक नहीं समझती रही ? तुम्हारे मंडोवर छोड़ने पर आठ-आठ आँसू नहीं रोई ?

रणमल—(अत्यन्त विनम्रता से) तुम से बढ़ कर समस्त मंडोवर में मेरा कोई हितचिन्तक न था । मैं जानता था, कि जब मैं यहाँ प्रदेश में निर्वासन के कष्ट सह रहा हूँ, मंडोवर के महलों में भी माँ को छोड़ कर एक आत्मा है जो मेरे दुख में दुखी है । वह आत्मा तुम्हारी ही तो थी बहिन । माँ के बाद यदि मैंने किसी का प्यार पाया है तो वह तुम्हीं हो । मुझ से छोटी हो, किन्तु तुमने बड़ी बहिनों की भाँति मेरा ध्यान रखा है । मैंने भी क्या तुम्हारे हित के

विचार से समय पर सावधान नहीं कर दिया था ? कहो बहिन, क्या मैंने न लिखा था ?

हंसाबाई—यह तो होना था, यह तो होना था और जो हो चुका, उस पर मैं क्यों पछताऊँ ?

रणमल—हाँ, यह होना था, पिता जी न मानते तो चंड विवश करता, वह राजपूत है और मुझे उसके दृढ़-संकल्प से भय आता है । (उदासी से) यह तो होना ही था ! पर इसीलिए मैंने लिखा था कि शर्तें मनवा लेना । अब तो चंड असहाय है, (खुश होकर) अब वह युवराज न होगा, कुछ ही महीनों की बात है मेरी बहिन का...

हंसाबाई—(रणमल के मुँह पर हाथ रख कर और मुस्करा कर) चुप रहो, चुप रहो । (गम्भीरता से) मैं कहती थी कि यदि राज्य का सब प्रबन्ध चंड अथवा कुमार राघव के हाथ में ही रहा तो मैं जैसे रानी हुई, जैसे न हुई ।

रणमल—यही तो मैं भी कहता हूँ कि तुम जैसे रानी हुई, जैसे न हुई । मैं भी यही सोचता हूँ पर क्या करूँ, मैं तो यहाँ सेवक जैसा हूँ, मुझे ज़रा भी अधिकार होता तो मैं तुम्हें.....

हंसाबाई—तुम्हें अधिकार मिल जायँगे, मेरा भाई मेरे ही राज्य में अधिकार-हीन रहे, यह कैसे हो सकता है ?

रणमल—राघव की ओर से तुम निश्चिन्त रहो । चंड से अधिक प्रजा उसे मानती है, किन्तु मैंने ऐसी युक्ति लड़ायी है कि वह स्वयं

ही चित्तौड़ छोड़ देगा ।

हंसाबाई—(उत्सुकता से) कैसे ?

रणमल—यह न पूछो, बस यह निश्चय समझो कि वह चला जायगा और रहा युवराज (धीमे स्वर में) उसके प्रभाव को कम करने के लिए ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि राठौरों को सेना में उच्च पद मिल जायँ, ताकि यदि युवराज चाहे भी तो हमारे विरुद्ध कुछ न कर सके ।

हंसाबाई—तुम ठीक कहते हो, मैं महाराणा से कहूँगी ।

रणमल—और एक बात अत्यावश्यक है । भारमली को न जाने देना । राजनीति की शतरंज पर मैं उसे एक गोट बानाना चाहता हूँ ।

हंसाबाई—महाराणा ने तो उसे मेरे पास भेजने को कहा था, मालूम होता है, अभी रानी जी का दिल उसे छोड़ने को नहीं चाहता । अच्छा आज देखूँगी । (रणमल से) भाई, तुम जाओ और मुझे अपने उन सैनिकों की सूची दो जिन्हें तुम किसी पद के योग्य समझते हो ।

रणमल—जैसी तुम्हारी आज्ञा बहिन !

प्रस्थान

हंसाबाई—बाजी लगा रही हूँ युवराज, चाहे उलटी पड़े चाहे सीधी । तुम्हारा यह दम्भ, यह दर्प मुझ से देखा नहीं जाता, तुम मेरा हाथ झटक कर चले गये, किन्तु स्मरण रखना एक दिन

तुम्हें इसी हंसाबाई के सामने झुकना पड़ेगा, अथवा सब अधि-
कार त्याग कर चित्तौड़ को छोड़ देना होगा ।

राणा लक्षसिंह का प्रवेश

हंसाबाई—(आगे बढ़ कर स्वागत करती हुई) आओ नाथ !
आज आप का चेहरा उल्लसित है, क्या कोई अच्छा समाचार
सुनने को मिलेगा ?

लक्षसिंह—मेरे उल्लास और विषाद का आधार तुम्हीं तो हो,
हंस ! जब तुम्हारे मुख पर मुसकराहट खेलती है तो मेरा हृदय
खिल उठता है और जब इस चाँद पर अवसाद के बादल छा
जाते हैं तो मेरे दिल की दुनियाँ भी अँधेरी हो जाती है !

आकर बैठते हैं और अनिमेष दृगों से

हंसाबाई को देखते हैं ।

हंसाबाई—आप मेरी ओर इस भाँति क्यों देख रहे हैं ?

लक्षसिंह—मैं इस अनुपम सौन्दर्य को निहार रहा हूँ । देख
रहा हूँ वह हाथ कैसे होंगे जिन्होंने सुन्दरता की ऐसी प्रतिमा
बनायी ।

हंसाबाई—आप मुझे बनाया करते हैं ।

लक्षसिंह—यह तुम कहती हो हंस ?

हंसाबाई—(रुठने के भाव से) और क्या ! यहाँ आये तो
मेरी प्रशंसा कर दी । वहाँ गये तो उन की प्रशंसा के पुल
बाँध दिये ।

लक्षसिंह—हंस !

हंसाबाई—रहने दीजिए महाराज ! आप अपनी आत्मा को क्यों धोखा देते हैं। मैंने कभी आप से कहा कि बड़ी रानी के महलों में न जायें। मुझे आपका प्रेम चाहिए, सब ओर बँट जाने के बाद जो शेष रह जाय वही सही, मैं उसे पाकर भी अपने भाग्य को सराहूँगी।

लक्षसिंह—हंस ! (गला भरा है, उठ कर घूमते हैं।) मैंने तुम्हारे लिए राज-पाट, स्त्री, पुत्र सब कुछ भुला दिया।

हंसाबाई—(व्यंग से) तभी तो आप को अपने वचन याद नहीं रहते।

लक्षसिंह—कौन से वचन ?

हंसाबाई—जो रोज किये जाते हैं और रोज भुला दिये जाते हैं।

लक्षसिंह—कोई बताओ तो सही ?

हंसाबाई—आपने कहा था तुम्हारा मन उदास है, भारमली को भेज दूँगा—आयी भारमली ?

लक्षसिंह—(चौंककर क्रोध से) हैं ! भारमली नहीं आयी ? सच जानना हंस, मैंने तीन बार कहला भेजा है, और कल युवराज से भी कहा, वह क्यों नहीं आयी—दासी !

दासी का प्रवेश

लक्षसिंह—भारमली को बुला लाओ।

दासी का प्रस्थान

—और कहो प्रिये, चाहे भारमली को बड़ी रानी ने स्वयं रखा है, किन्तु यह कैसे हो सकता है कि तुम कोई इच्छा करो और वह पूरी न हो ।

फिर बैठ जाते हैं, हंसा उनके कंधे पर

सिर रखती है, मुसकराती है ।

हंसाबाई—और रणमल ?

लक्ष्मिह—रणमल क्या ?

हंसाबाई—मेरा भाई, मेरे ही राज्य में एक दास का सा जीवन बिता रहा है ।

लक्ष्मिह—क्या कहा दास ! मंडोवर कुमार तो सरदार है । इस समय भी बीस सहस्र सैनिक उसके अधीन हैं ।

हंसाबाई—मेरा भाई केवल बीस सहस्र सिपाहियों का नायक ?

लक्ष्मिह—तो कहो प्रिये, तुम अपने भाई के लिए कौन सा पद चाहती हो ?

हंसाबाई—मैं उसके लिए मन्त्री का पद चाहती हूँ ।

लक्ष्मिह—कल से वह राज्य के मन्त्री होंगे ।

हंसाबाई—सेना पर किसका अधिकार होगा ?

लक्ष्मिह—सेनापति का !

हंसाबाई—तो महाराज उन्हें सेनापति बना दीजिए ॥

लक्ष्मिह—चाहे इस समय सेना कुमार चंड के हाथ

है पर तुम्हारी इच्छा पूरी होगी ।

दासी का प्रवेश

दासी—(राणा से) कुमार राघव एक विशेष प्रयोजन से आप से मिलना चाहते हैं ।

लक्ष्मि—चलो मैं आया, (हंसाबाई से) हंस ! तुम निश्चिन्त रहो । तुम्हारा भाई शीघ्र ही सेनापति होगा ।

हंसाबाई—(मुसकराती है ।)

लक्ष्मि—मात्र मुसकराहट (हँसाते हैं ।) खैर, तुम मुस-
कराई तो हो, यही क्या कम है ?

प्रस्थान

रानी दासी को बुलाती है । दासी का प्रवेश

हंसाबाई—(दासी से) भारमली नहीं आयी ?

दासी—रानी जी, वह तो कब की प्रतीक्षा कर रही है ।

हंसाबाई—बुला लाओ !

दासी जाती है और भारमली को बुला लाती है ।

भारमली अभिवादन करती है ।

हंसाबाई—तो तुम भारमली हो ? जिस के गानों की मैंने इतनी प्रशंसा सुनी है ?

भारमली—दासी उपस्थित है ।

हंसाबाई—भारमली ! तुम्हारी प्रशंसा बहुत देर से सुन रही हूँ, आज कुछ सुनने को जी चाहता है, इसीलिए तुम्हें बुलाया

है। कोई मीठा मादक गीत गाओ जिस से मन को शान्ति मिले, सुख मिले।

भारमली—आज रानी जी, जी उदास है।

हंसाबाई—(क्रोध से) जी उदास है ! क्या मेरे यहाँ आते ही तुम्हारे जी पर उदासी छा गयी ? वहाँ दिन रात गाते तुम्हारी तबीयत उदास नहीं होती ? भारमली, मैं यह न सहन कर सकूँगी। तुम्हें गाना होगा।

भारमली—रानी जी गा दूँगी, किन्तु गाने का सम्बन्ध तो दिल से है। जब वह ही स्वस्थ नहीं, तो गाना क्या आनन्द देगा ? जिस सितार के तार ही अस्त-व्यस्त हों, उस से स्वर क्या निकलेगा ?

हंसाबाई—अच्छा न गाओ ! मैं समझ गयी। किन्तु भारमली यदि तुम मेरे महलों में न गाओगी तो वहाँ भी न गा सकोगी।

पट-परिवर्तन

एक पहाड़ी पगडण्डी

घोड़े की रास थामे राघवदेव प्रवेश करते हैं ।

पीछे पीछे उनका सेवक हरिसिंह आता है ।

राघव—अत्यन्त दुर्गम मार्ग है हरिसिंह !

हरिसिंह—हाँ महाराज ! अत्यन्त दुर्गम !

राघव—घोड़े पर चलना सर्वथा असम्भव है ।

हरिसिंह—महाराज ! कुछ देर यहीं विश्राम कीजिए, फिर यह सामने जो चढ़ाई है, इसे हम पार कर लेंगे । हमारे साथी भी इतने में पहुँच जायेंगे, बस उनके साथ हम खेलवाड़ा जा पहुँचेंगे, इसके आगे तो सर्वथा सीधा मार्ग है ।

राघव—हरिसिंह !

हरिसिंह—हाँ महाराज !

राघव—चित्तौड़ बहुत दूर रह गया ?

हरिसिंह—बहुत दूर महाराज !

राघव—(दीर्घ-निश्वास छोड़ते हैं ।)

हरिसिंह—क्यों महाराज ! दीर्घ-निश्वास क्यों ?

राघव—मुझे यह जागीर पाकर खुशी नहीं हुई । यह मेरा उत्थान नहीं, हरिसिंह ! यह मेरा पतन है । मैं युवराज की दृष्टि में गिर गया, स्वयं अपनी दृष्टि में गिर गया ।

हरिसिंह—आर थक गये हैं महाराज, आप आराम कीजिए ।

राघव—हरिसिंह ! मैं चित्तौड़ को छोड़ना न चाहता था । चित्तौड़ की गली गली में मेरी आत्मा बसती है, चित्तौड़ का प्रत्येक भ्राणी मेरा बन्धु है और चित्तौड़ के पहाड़, सरोवर, उपवन—ओह ! हरिसिंह मैं चित्तौड़ से आना न चाहता था । मैं ऐसे हूँ, जैसे निर्वासित कर दिया गया हूँ ।

हरिसिंह—महाराज, आपने स्वयं जागीर माँगी, स्वयं चित्तौड़ को छोड़ने की अभिलाषा प्रकट की ।

राघव—हाँ, मैंने स्वयं ही जागीर माँगी, स्वयं ही.....(जैसे अपने से) किन्तु मैं क्या करता ? मैं गिरता जा रहा था, मैं गिरता जा रहा था, अपने चरित्र से गिरता जा रहा था और यह तो पश्चात्ताप है.....(हरिसिंह की ओर मुड़ कर) चलो हरिसिंह विश्राम नहीं, मैंने विश्राम नहीं लिया, चलता ही रहा हूँ, तो अब विश्राम क्यों—(फिर अपने आप धीरे-धीरे) पुरानी स्मृतियों को भूल जाऊँ, मोह को छोड़ दूँ । अब नये स्थान पर नया संसार बसाऊँगा, नई दुनिया का सृजन करूँगा—किन्तु कर भी सकूँगा ? मेरी स्फूर्ति तो जैसे पीछे रह गयी है, मेरी शक्ति तो जैसे पीछे रह गयी है ?

घोड़े को पुचकारते हैं, उसकी पीठ पर हाथ फेरते हैं ।

फिर रास थामे आगे बढ़ते हैं ।

हरिसिंह पीछे पीछे जाता है ।

पटाक्षेप

चतुर्थ अंक

१

चित्तौड़ को एक वाटिका ।

मालिन और माली ।

परदा उठने से पहले मालिन के गाने का स्वर सुनायी देता है ।

गाओ रे मन मंगल-गान

मंगल-गान

तेरे घर काहन जन्मा है

रानी खुशियाँ मान

गाओ रे मन मंगल-गान

मंगल-गान

परदा धीरे धीरे उठता है, मालिन बैठी हार गूँथ

रही है और माली फूल इकट्ठे कर रहा है । मालिन

हार गूँथती और गाती भी जाती है ।

राजा खोल खज़ाने अपने

कर जी भर कर दान

गाओ रे मन मंगल-गान

मंगल-गान

मालिन सुई धागा रख देती है

गुँथे हुए हार को अन्यमनस्कता से फेंकती है ।

मालिन—अब यह मुझ से नहीं होता, यह सब मुझ से नहीं होता ।

माली—(फेंके हुए हार को टोकरे में सजाता हुआ) हो सकेगा, सब कुछ हो सकेगा, मेरी, रानी ! दिल जरा कड़ा कर लो, सोच लो साल-भर के पैसे आज निकल आयेंगे ।

मालिन—ओह ! मैं थक गयी हूँ, मेरी अंगुलियाँ दुखने लगी हैं, मेरी आँखें दुखने लगी हैं ।

माली—फिर आराम होगा, आज के बाद मेरी रानी ! देखो मेरे हाथ—जल्दी के कारण इन में कितने काँटे चुभ गये हैं, कितनी जगह से रक्त बह निकला है ? किन्तु छलनी भी हो जायँ तो भी मैं फूल लाता रहूँगा ।

मालिन—बैठे बैठे मेरी कमर दुखने लगी है । मेरी भुजाएँ ऐंठ गयी हैं और यह समाप्त होने में ही नहीं आते, यह फूल, मैं जितना गूँथती हूँ, तुम उतने और ला देते हो ।

माली—यह कुछ नहीं, यह कुछ नहीं, अम्बार भी लगा दूँ तो बहुत नहीं, आज दुगना मोल मिलेगा, देखने तक को हार न मिलेंगे ।

मालिन—दुगना मोल मिलेगा ?

माली—आज खुशियाँ मनायी जा रही हैं, आज उद्यानों में फूल समाप्त हो गये हैं, आज मुँह माँगे दाम मिलेंगे ।

मालिन—दुगने तिगुने ?

माली—हाँ दुगने, तिगुने, त्रितने चाहेंगे ! आज कुमार का जन्म हुआ है, मेवाड़ के भावी-सम्राट् का जन्म हुआ है ।

मालिन फिर हार गूँथती है ।

मालिन—मेवाड़ के भावी सम्राट् का ?

माली—हाँ ! और सब मन्दिरों में पूजा होगी, समस्त नगर के मन्दिरों में !

मालिन—युवराज चंड अब राज्य न करेंगे ?

माली—नहीं, वह अधिकार छोड़ चुके हैं ।

मालिन—तो छोटी रानी का पुत्र ही मेवाड़ का भावी अधिपति होगा ?

माली—हाँ, यही जो आज जन्मा है । प्रसन्नता और उदासी के मिले-जुले भावों के साथ आज मन्दिरों में पूजा होगी ।

मालिन—उदासी ?

माली—युवराज अब युवराज न रहेंगे, हमारे वीर, साहसी प्रजावत्सल युवराज !

मालिन—और प्रसन्नता ?

माली—आखिर जन्म तो मेवाड़ के भावी राणा ही का हुआ है, फिर खुशी क्यों न होगी ? आधी रात तक मन्दिरों में पूजा होती रहेगी, आधी रात तक !

मालिन—आधी रात तक ?

माली—हाँ और दीपमाला भी होगी । सब बाजारों में,

समस्त गलियों में, (उल्लास से) ओह ! तुमने यह सब समाप्त कर दिये । (फूलों की ओर देखकर) तुम्हारे हाथों में विद्युत का वेग है ।

मुसकरा उठता है ।

मालिन—और न लाओ, मैं थक गयी हूँ, मरने को हो गयी हूँ ।

माली—आज का दिन, बस आज का दिन !

मालिन—तुम हार बनाओ, मैं फूल लाऊँगी !

माली—तुम्हारे हाथ छलनी हो जायँगे, उन में काँटे लग जायँगे ।

मालिन—मेरी अंगुलियाँ छलनी हो गयी हैं, सुई से छलनी हो गयी हैं ।

माली—तुम बनाओ मेरी रानी, आज का दिन और, बस, दो चार घंटे ! मैं इतनी जल्दी न बना सकूँगा, मेरे हाथों में इतना वेग नहीं—मेरी रानी, मेरी अच्छी रानी !

मुसकरा कर चला जाता है ।

मालिन—(मुसकराती है ।) तुम बड़े चतुर हो, तुम बड़े चतुर हो ।

तेजी से हार गूँथती है ।

पट-परिवर्तन

एक पहाड़ी कन्दरा

मशालों की रोशनी में रणमल अपने साथियों
के साथ प्रवेश करता है ।

पहला—यह खोह कितनी अँधेरी है ।

दूसरा—ऐसा लगता है, जैसे दिन के भय से रात यहीं
आकर छिप गयी है ।

पहला—और ठंडी कितनी ?

दूसरा—जैसे शिशिर का शीत !

तीसरा—गहरी ?

चौथा—जैसे पाताल !

रणमल—इसीलिए सुरक्षित है । ऐसा सुरक्षित और गुप्त
स्थान सारे चित्तौड़ में कोई न होगा । किसे सन्देह हो सकता है
कि यहीं—चित्तौड़ की छाती पर बैठ कर— रणमल इस राज्य
के भविष्य पर विचार करता है ?

पहला—यहाँ बैठने को भी तो कोई स्थान नहीं ?

रणमल—वीरों को बैठने के लिए किसी वस्तु की आवश्यकता
नहीं । यह ठंडे सख्त पत्थर ही उन के सिंहासन हैं । यहीं
बैठ जाइए ! आज मुझे आप से एक महत्व-पूर्ण विषय पर
परामर्श करना है ।

सब जहाँ तहाँ उभरे पत्थरों पर बैठ जाते हैं ।

रणमल—(बाघसिंह से) बाघसिंह जाओ, कन्दरा का द्वार बन्द कर आओ और सैनिकों से कह दो कि सावधान रहें ।

बाघसिंह का प्रस्थान

—आज आप लोगों की कृपा से मेवाड़ की अधिकांश सेना पर राठौरों का अधिकार है, समय आने पर राठौर सिसोदिया वंश का जुआ उतार कर अधीनता के बन्धन तोड़ देंगे और सदैव के लिए मेवाड़ पर अपना आधिपत्य जमा लेंगे ।

एक—हम बेचैनी से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

दूसरा—वह दिन समीप आ रहा है, केवल आप लोग कटिबद्ध हो जायँ तो दिनों में ही वह सब कुछ हो जायगा, जो आज तक नहीं हुआ ।

सब—हम सब प्रस्तुत हैं, सेनापति के इंगित पर अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैयार हैं ।

रणमल—मैं अनुगृहीत हूँ । आप लोगों के बल पर ही मैं इस बड़े काम का बीड़ा उठा रहा हूँ । आप लोगों ने सुख में, दुख में, सर्दी गर्मी में, मेरा साथ दिया है । आप लोगों से मुझे बड़ी आशाएँ हैं । मेवाड़ के राज्य की कुंजी, इस समय हमारे हाथ में है । बड़े-बड़े पदों पर राठौर नियुक्त हैं । अब तो केवल अवसर की देर है और फिर आप लोगों के साहस.....

सब—हमारे साहस का पता अवसर ही देगा ।

रणमल—मुझे ज्ञात है । राठौरों की तलवार का पानी चमक में किसी से भी कम नहीं ! मित्रो, मंडोवर से भी अच्छी सूचनाएँ नहीं आ रही । पिता जी मरण-शय्या पर पड़े हैं । निर्वासित मैं उनके जीवन-काल में उनकी आज्ञा के बिना मंडोवर में पाँव नहीं रख सकता और वह मुझे बुलाने क्यों लगे, छोटी माँ बुलाने ही कब देंगी ?

पहला—वह तो काहा को सिंहासन पर बिठाएँगी ।

दूसरा—काहा को, जो अभी माँ की गोदा से अलग होने पर रो उठता है !

तीसरा—जो तोतली जबान के सहारे जीता है !

चौथा—पाँच वर्ष का दुर्बल और तेज-हीन बालक !

रणमल—छोटी रानी की ऐसी ही इच्छा है । पिता जी ने उसे युवराज भी तो घोषित कर दिया है ।

पहला—मात्र युवराज घोषित कर देने से वह युवराज न हो जायगा । राजमुकुट तो जनता को धरोहर है । यह तो वीरों का गहना है—एक निस्तेज दीन-हीन बालक का खिलौना नहीं । आपको मंडोवर का सिंहासन विरोधियों के हाथों में न जाने देना चाहिए । अपने अधिकार की रक्षा करनी चाहिए ।

रणमल—किन्तु पिता जी ने.....

पहला—महारावल को क्या अधिकार है कि वे प्रजा की धरोहार दुर्बल हाथों में दे दें। आप उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं, वीर हैं, साहसी हैं, सिंहासन के अधिकारी हैं, आपको मंडोवर की रक्षा करनी चाहिए।

रणमल—मैं तो सेवक हूँ, मैं तो आप लोगों का दास हूँ, राजा प्रजा का सेवक होता है।

सब—आप हमारे राजा हैं, हमारे सिर के ताज हैं।

रणमल—मैं तो सेवक हूँ। मुझे आप जैसे कहेंगे, करूँगा।

पहला—मंडोवर का राज्य आपको अपने हाथ में लेना होगा, उसकी सुव्यवस्था करनी होगी।

रणमल—आपकी जैसी इच्छा होगी, मैं करूँगा।

दूसरा—अवशकता पड़ी तो आपको मंडोवर पर आक्रमण करके रानी को अधिकार-हीन करना होगा, नहीं तो मंडोवर राठौरों के हाथ से छिन जाएगा।

तीसरा—स्त्री क्या और राज्य-प्रबन्ध क्या ?

रणमल—मैं आप के सद्भावों को जानता हूँ। आप को मुझ दीन से जो प्रेम है उस के लिए मैं आभारी हूँ। मेवाड़ की समस्त सेना इस समय हमारे हाथ में है। इस की सहायता से मंडोवर को हस्तगत कर लेना कोई कठिन काम नहीं।

पहला—हंसाबाई तो आपत्ति न करेगी ?

रणमल—हाँ हंसाबाई आपत्ति करेगी, किन्तु सब ठीक हो जायगा, सब ठीक हो जायगा । राणा लक्षसिंह गया के युद्ध पर जा रहे हैं.....

दूसरा—राणा लक्षसिंह जा रहे हैं ?

रणमल—हाँ ! जाना चाहते हैं । वे दुर्बल होकर, बीमार होकर मरना नहीं चाहते । वे इस पवित्र काम के निमित्त रण-भूमि में वीर-गति को प्राप्त होना चाहते हैं । वे जायेंगे और उन के बाद मैं सब कुछ कर सकूँगा ।

पहला—और कुमार चंड ?

रणमल—चंड ! उसे हट जाना होगा, उसे मेरे मार्ग से हट जाना होगा । उसे मेरी महत्वाकांक्षा की आग में भस्म हो जाना होगा । वह निर्वासित होगा, उसे निर्वासित कर दिया जायगा ।

सब अवाक् होकर उसके मुँह की ओर देखते हैं ।

पट-परिवर्तन

राणा लक्ष्मि सिंह और कुमार चंड

लक्ष्मि सिंह—नहीं चंड मैं जाऊँगा, मैं वृद्ध हो गया हूँ। कौन जाने कब इस दुर्बल शरीर को मृत्यु का रोग लग जाय ? मैं ऐसा नहीं चाहता—तुम क्या ऐसा चाहते हो ? क्या तुम चाहते हो, कि तुम्हारा पिता राजपूत होता हुआ, सिपाही होता हुआ, मेवाड़ का राणा होता हुआ, युद्ध-भूमि में प्राण देने के बदले, विस्तर पर तड़प-तड़प कर, एड़ियाँ रगड़ रगड़ कर जान दे ?

चंड—किन्तु पिता जी.....

लक्ष्मि सिंह—कहो बेटा, क्या तुम ऐसा चाहते हो ? अपने पिता के लिए ऐसी दयनीय मृत्यु चाहते हो ? मुझे तो पहले ही देर हो गयी है। यह पाँच छः वर्ष कुल की मर्यादा और अभिमान के अर्पण हो गये। किन्तु क्या इस से मैं अपनी प्रकृति को बदल सकूँगा।

चंड—नहीं पिता जी आप वीर हैं। मैं आज गद्गद हो गया। मुझे ऐसे वीर पिता का पुत्र कहलाने में गर्व अनुभव होता है।

लक्ष्मि सिंह—बेटा ! मैंने तुम्हें आज इसीलिए बुलाया है।

मैं शीघ्र ही चला जाऊंगा, यह निश्चय है, ध्रुव है। तुम कहो मैं मोकल के नाम कौन सी जागीर लगा जाऊँ। बाद को भगड़ा न हो, इस विचार से मैं अपने जाने के पहले यह सब कुछ ठीक कर जाना चाहता हूँ।

चंड—मोकल को जागीर पिता जी ? मोकल तो मेवाड़ के स्वामी होंगे और मैं तो उन का सेवक होऊँगा !

लक्ष्मि—तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो। वंश-परम्परा के अनुसार सिंहासन पर तुम्हारा ही अधिकार है। मुझे सब से प्रिय हो, राज-काज में दक्ष हो, मेरे बाद तुम ही राजा होगे। इसलिए कहो मैं उसे कौन सी जागीर दे जाऊँ ? वह अभी बच्चा है। तुम्हारे ही ऊपर उसके पालन-पोषण का भार रहेगा।

चंड—किन्तु पिता जी, राज्य अब मैं न लूँगा। यह अटल है। वह तो मोकल का हो चुका। मैं तो अब मेवाड़ के भावी राणा का सेवक हूँ और सेवक के नाते जो काम आप मेरे जिम्मे लगाएँ वह मैं जी जान से करूँगा। भगवान् एकलिंग के सम्मुख मैंने जो शपथ ली वह क्या यथेष्ट नहीं थी जो आप यह पृच्छ रहे हैं। शपथ ! मैं कहता हूँ, यदि मैं शपथ नहीं लेता तो मेरा वचन ही काफी था। क्या मैंने भगवान् राम के कुल में जन्म नहीं लिया, क्या आप भगवान् राम के वंशज नहीं ? क्या प्राण रहते हमारा वचन झूठा हो सकता है ?

आप ने कहा था—तुम्हें सिंहासन छोड़ना होगा और मैंने उसे छोड़ दिया। अब क्या आप अपनी बात टालेंगे और क्या मैं उस में सहायक होऊँगा ? न, ऐसा न होगा। मोकल ही राणा हों, मैं सेवक ही अच्छा।

लक्ष्मि—(चंड को छाती से लगा कर) चंड, वत्स, मुझे तुम से ऐसी ही आशा थी। अब मैं चैन से जा सकूँगा और अपनी समस्त जाती हुई शक्तियों को इकट्ठा करके रण में कूद पड़ूँगा। मुझे अब कोई चिन्ता नहीं। गया के निरीह और निर्बोध यात्रियों पर यवनों के अत्याचार बढ़ रहे हैं। मैं इस अत्याचार को सहन नहीं कर सकता। मैं उस पवित्र भूमि को आततायियों से پاک कर दूँगा और इस अन्तिम कर्तव्य से छुट्टी पा जाऊँगा।

चंड—मैं मोकल का पूरा-पूरा ध्यान रखूँगा। एक सेवक की भाँति राज्य की व्यवस्था करूँगा। किन्तु आप यवनों पर विजय प्राप्त करके आ जायेंगे।

लक्ष्मि—चंड ! विजय मैं चाहे प्राप्त कर लूँ, किन्तु आऊँगा नहीं, मैं आने के लिए नहीं, जाने के लिए जा रहा हूँ। पहले मेवाड़ को आये दिन युद्ध का सामना करना पड़ता था और इससे वृद्धों को रणक्षेत्र में अन्तिम नींद सोना दुर्लभ न था। उनकी अभिलाषा यहीं पूरी हो जाती थी और वे रणभूमि

में शत्रुओं के शवां की सोपान बना कर स्वर्ग-यात्रा करते थे परन्तु अब युद्ध बन्द हो चुके हैं, लड़ते-लड़ते, वीर-गति को प्राप्त करना दुर्लभ हो गया है। इसलिए मैं गया के आततायिओं पर चढ़ाई करूँगा। मैं आयु भर लड़ता रहा हूँ और लड़ते लड़ते प्राण देना चाहता हूँ। मोकल की रक्षा का भार तुम पर है।

चंड—मैं तैयार हूँ, जो आप की आज्ञा होगी वह मैं प्राणपण से पालूँगा।

लक्ष्मिह—वत्स ! तुम ने जिस पितृ-भक्ति का सबूत दिया है, उसका उदाहरण ढूँढ़े से भी न मिलेगा। दुख यह है कि ऐसे पितृ भक्त पुत्र का पिता मैं हुआ, जिस के कारण उसका अधिकार छिन गया।

चंड—अधिकार ! आप लुब्ध न हों पिता जी, राजपूत का अधिकार उसकी तलवार है, वह, रहते दम, उस से कोई नहीं छीन सकता। रहा यह राज्य ! सो पिता जी चंड आप के चरणों पर सहर्ष ऐसे सहस्रों राज्य निझावर कर सकता है।

लक्ष्मिह—मैं तुम्हें क्या आशीष दूँ। मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ ? (सोचते हैं।) अच्छा मैं यह आज्ञा देता हूँ कि आज के बाद मेवाड़ के महाराणाओं की ओर से जो परवाने और सनदें दी जायँ उन पर भाले का चिह्न

तुम और तुम्हारे वंजल लगायँ । मन्त्री को बुला कर मैं इस की घोषणा करा दूँगा ।

चंड—इस सम्मान के लिए मैं कृतज्ञ हूँ ।

नतमस्तक होते हैं ।

पट परिवर्तन

खेलवाड़ा में राघवदेव के भवन का एक भीतरी बरामदा
दो हहरेदार बातें कर रहे हैं।

पहला—वह तो जादूगरनी है। जब गाती है, तो श्रोताओं को मुग्ध कर देती है। कोई हिलता तक नहीं। चित्र-लिखित से रह जाते हैं।

दूसरा—तुमने देखा ?

पहला—देखा—सुना, सब ऐसे थे, मानों उन्हें अपने तन का ज्ञान न हो। उस समय चाहे उन्हें कोई लूट ले, उनका गला काट ले।

दूसरा—ऐसा अच्छा गाती है ?

पहला—गाती नहीं, मैंने कहा, जादू करती है। उसकी आँखों में कुछ ऐसी मादक शक्ति है, कुछ ऐसा आकर्षण है कि देखने वाला देखता ही रह जाता है और फिर उसका स्वर, उसका मनोमुग्धकारी स्वर, उसकी चेतनता हर लेता है, उसे मूक, निष्पन्द बना देता है।

दूसरा—हमारे कुँवर पर भी सुनते हैं उसने जादू फूँका है।

पहला—मैं जानता हूँ, मैं जानता हूँ। एक दिन—पहले ही दिन, वह गा रही थी कि उधर से कुँवर गुजरे, उन्होंने घोड़ा

रोक लिया, उसका गीत सुना और होश खो बैठे ।

दूसरा—अब वह यहाँ आती है ।

पहला—और अब आयगी, बार-बार आयेगी । वह इस जागीर की स्वामिनी होकर रहेगी ।

दूसरा—यह असम्भव है । कुमार प्रजा-पालक और कर्त्तव्य-परायण हैं । एक गायिका के लिए वे प्रजा के हितों पर कुठार न चलायेंगे ।

पहला—किन्तु उसने यों ही मन्त्र नहीं पूँका ।

दूसरा—अरे छोड़ो, जादू वादू क्या ? वह अद्वितीय गायिका है और अनुपम सुन्दरी ! बस यही न ? मैंने तो सुना है, वह चित्तौड़ में भी रही है । वहाँ से राजकुमार यहाँ आ गये तो वह भी आयी । तुम कहते हो इसने कुमार पर जादू किया है । मैं कहता हूँ कुमार ने उस पर जादू किया है । हमारे कुमार सुन्दर और बलिष्ठ भी कितने हैं । समस्त मेवाड़ में उन जैसा खूब-सूरत कोई न होगा ।

पहला—मैं नहीं मानता, जादू उसने ही किया है ।

दूसरा—अरे कहाँ जादू ?

पहला—तुमने देखा नहीं, तुमने सुना नहीं । (सामने देखकर) वह देखो, आ रही है ।

दूसरा—(दूसरी ओर देखकर) और कुमार भी आ रहे हैं ।

दोनों की जोड़ी कैसी सुन्दर है, जैसे काम और रति दो दिशाओं से मिलने को आ रहे हैं। कुमार विवाह न करेंगे पर मैं तो कहूँगा दोनों बने एक दूसरे के लिए हो हैं।

दोनों जाकर तत्परता से दरवाजों पर खड़े हो जाते हैं।

एक ओर से भारमली और दूसरी ओर से

कुमार राघवदेव का प्रवेश, भारमली

अभिवादन करती है।

राघवदेव—तुम फिर आ गयी भारमली !

भारमली—मैं रुक न सकी कुमार ?

राघवदेव—क्या कुछ और चाहती हो ? भारमली, जो तुम ने कहा मैंने कर दिया। तुमने कहा, मैं खेलवाड़ा में रहूँगी, मैंने अनुमति दे दी। भाई के साथ जो प्रण किया था, उसके अनुसार मुझे यह न करना चाहिए था। तुमने रंगशाला स्थापित करनी चाही मैंने आज्ञा दे दी। मैं वहाँ जाना न चाहता था, तुम्हारे अनुरोध पर कई बार वहाँ गया। वापस आता था, प्रण करता था, अब न जाऊँगा, किन्तु तुम आती, फिर चला जाता और वहाँ जाकर अपने आप को, अपनी प्रजा के हितों को, सब को भूल जाता।

भारमली—(रुद्ध कंठ से) कुमार ! क्या मेरे यहाँ कुछ क्षण आने से प्रजा के हितों की हानि हो जाती है ?

राघवदेव—हाँ, तुम नहीं समझती भारमली ! प्रजा के लिए जिन्होंने अपना जीवन दे दिया है उनसे कैसी आशा रखी जाती है ? उन्हें कितना सतर्क रहना पड़ता है ? और मैं तो अपना कर्त्तव्य भूलता जाता हूँ । तुम से मुझे डर लगता है भारमली ।

भारमली—मैं ऐसी ही डर की वस्तु हूँ कुमार, कोई सुनेगा तो हँसेगा ।

राघवदेव—मैं डरता हूँ, मैं बह जाऊँगा, मैं भाई जैसा नहीं, मैं पत्थर नहीं, चट्टान नहीं भारमली ! तुम जाओ, खेलवाड़ा से चली जाओ, मेवाड़ से चली जाओ, दूर—बहुत दूर चली जाओ । तुम नहीं जानती, तुम्हें देख कर मुझे क्या होने लगता है । मैं अपने आप को भूल जाता हूँ, अपने कर्त्तव्य को भूल जाता हूँ, मैं कुछ कर नहीं पाता, मैं सोचता रहता हूँ ।

भारमली—क्या सोचते रहते हो ?

राघवदेव—भारमली ! तुम जाओ मैं निर्बल हूँ, तुम जाओ !

भारमली—कहाँ जाऊँ कुमार, जाना चाहती हूँ, जा नहीं पाती और अब तो.....अब तो.....

(आँखें भर आती हैं)

राघवदेव—क्यों क्यों, क्या बात है भारमली ?

भारमली—मैं नहीं जा सकती, मैं कहीं नहीं जा सकती (दोनों हाथों से मुँह छिपा लेती है ।)

राघवदेव—क्यों नहीं जा सकतीं ?

भारमली—मैं डर गयी हूँ, मैं तो आज कहने आयी थी, मैं रंगशाला में नहीं रहूँगी। तुम मुझे अपने पास आश्रय दो, महलों में आश्रय दो। मुझे डर लगता है, मुझे.....

राघवदेव—महलों में ! नहीं भारमली, महलों में नहीं, मुझे क्षमा करो। मेरी वर्षों की तपस्या पर पानी न फेरो। मुझे कुछ करने दो, खेलवाड़ा के लिए कुछ करने दो, मेवाड़ के लिए करने दो। तुम रहोगी तो मैं कुछ न कर सकूँगा। देखो, आज घर घर में मेरा नाम, किस श्रद्धा से, किस भक्ति से लिया जा रहा है। क्या तुम चाहती हो लोग मेरा नाम लें तो उनके मुखों पर घृणा की रेखाएँ दौड़ जायँ, उपेक्षा प्रतिविम्बित हो जाय। न भारमली, ऐसा न करो।

भारमली—तो मैं क्या करूँ कुमार, मैं कहाँ जाऊँ, कैसे अपनी रक्षा करूँ ?

(सिसकने लगती है ।)

राघवदेव—(उसके समीप जाकर) भारमली, भारमली !

भारमली—(सिसकते हुए) मैं पकड़ ली जाऊँगी, मैं महसूस करती हूँ—मेरी स्वतन्त्रता छीन ली जायगी। मेरा पीछा किया जा रहा है। मैं अपनी छाया से डरती हूँ, अपने आप से डरती हूँ।

राघवदेव—(जोश से) तुम्हारा पीछा किया जा रहा है, तुम्हें पकड़ना चाहते हैं। कौन है जो तुम्हारा पीछा करता है ? कौन तुम्हें पकड़ना चाहता है ? नाम लो और मेरी तलवार उसके सोने से पार हो जायगी। मेरे राज्य में भय भी रह सकता है ?

भारमली—तुम जानते हो।

(सिर को कुमार के कंधे से लगा देती है।)

राघवदेव—नाम लो भारमली !

भारमली—रणमल।

राघवदेव—रणमल—राठौर का यह साहस, उसकी यह स्पर्धा (तलवार पर हाथ जाता है।) कहो, वह यहाँ कब आया, कब उसने तुम्हारा पीछा किया ?

भारमली—तुम्हें चित्तौड़ के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं कुमार ! अब कुछ ही दिन में वहाँ राठौरों का आधिपत्य हो जायगा। सिसोदिया वंश के हाथ से अब वह निकल गया समझो।

राघवदेव—यह तुम क्या कहती हो ! कुमार चंड की उपस्थिति में, मेरी उपस्थिति में यह हो सकता है क्या ?

भारमली—तुम कुछ न कर सकोगे कुमार ! मैं कहती हूँ, तम देखते रह जाओगे; और मेवाड़ सिसोदियों के हाथ

से निकल जायगा ।

राघवदेव—कैसे भारमली ? यह तुम आज क्या कह रही हो ?

भारमली—और सुनो, स्वयं कुमार चंड ऐसा करने में सहायक होंगे । तुम्हें ज्ञात नहीं, मैं वहाँ से भागी क्यों ? इधर महाराणा के समर-यात्रा करने के पश्चात् उन के आदेशानुसार कुमार चंड ने राज्य का सब भार अपने कंधों पर ले लिया है और इस कुशलता से उसका संचालन किया है कि समस्त मेवाड़-वासी मुग्ध हो गये हैं ।

राघवदेव—फिर वहाँ राठौरों का आधिपत्य कैसे हो सकता है ? साफ-साफ कहो भारमली—पहेलियाँ न बुझवाओ ।

भारमली—इतना भी नहीं समझते । उनकी इस लोक-प्रियता ने दूसरों के मन में ईर्ष्या और द्वेष की आग सुलगा दी है और उनके शत्रु इस बात की ताक में हैं कि उन्हें अपने मार्ग से हटा दिया जाय । वे षडयन्त्र कर रहे हैं । रानी के कान भर रहे हैं ।

राघवदेव—शत्रु कौन ?

भारमली—रणमल और दूसरे राठौर । हो सकता है वे उनकी हत्या कर दें ।

राघवदेव—हत्या कर दें ! भारमली, मेरे रहते वे उनकी हत्या कर दें !! मैं संसार से राठौरों का अस्तित्व मिटा दूँगा ।

मेरे हृदय में उबलने वाली प्रतिशोध की आग एक एक राठौर को जला कर भस्म कर देगी ।

भारमली—वे हत्या न करें तो रानी उन्हें निर्वासित कर देगी । और निर्वासित न करे तो वह स्वयं अपने अधिकारों को त्याग देंगे । किन्तु वह मार्ग से हटा दिये जायेंगे, यह नश्चित है ।

कुमार चुप है, स्तब्ध है ।

भारमली—मैं वहाँ से भागी क्यों ?—दरबार में, महलों में नगर में, प्रान्त में, सब जगह राठौरों का आधिपत्य है । युवराज ने राज्य का शासन सँभालते ही बहुतों को निकाल दिया था; किन्तु रानी ने अपने भाई के अनुरोध पर उनको फिर रखने पर विवश कर दिया । इस स्थिति में क्या आशा रखी जा सकती है ?

राघवदेव—यह तो होना था । यह तो होना ही था । युवराज के प्रण का यह परिणाम तो दिखायी ही देता था ।

भारमली—कुमार चले जायेंगे, फिर तो अवस्था और भी शोचनीय हो जायगी, इसलिए मैं भाग आयी हूँ । रणमल के आदमी मेरे पीछे छाया की भाँति रहते थे, इसलिए मैं कुमार के जाने से पहले भाग आयी । मैं तो अब आश्रय चाहती हूँ कुमार ! तुमने ही मुझे पहले बचाया था, तुम ही अब बचाओ । एक बार दुख की खोह से निकाल कर फिर उसमें भटकने

के लिए तो न छोड़ दो । तुम कहते हो मेवाड़ से निकल जाओ !
कहो, बताओ, मैं कहाँ जाऊँ ?

राघवदेव—(निश्वास छोड़ कर, अत्यन्त वेदना के साथ) ओह !
तुम नहीं जानतीं मैं किन बेड़ियों में जकड़ा हुआ हूँ ।

भारमली—अभी तो कुछ नहीं कुमार ! महाराणा की ओर से
कोई सूचना नहीं आयी, किन्तु वे कह गये हैं, मैं न लौटूँगा और
उन के बाद.....

हरिसिंह घबराया हुआ प्रवेश करता है ।

हरिसिंह—कुमार, कुमार !

मुँह पर हाथ रख कर रोने लगता है ।

कुमार—(उसे कंधे से झटक कर) हरिसिंह, हरिसिंह, कहो
क्या बात है ?

हरिसिंह—हमारे महाराणा !

कुमार—हाँ हाँ हमारे महाराज !

हरिसिंह—(सिसकता हुआ) हमारे अच्छे.....हमारे
प्रतापी.....हमारे वीर महाराज.....(फिर सिसकता है ।)

राघवदेव—(श्रवरुद्ध गले से) कहो, कहो, मैं सुनने को
तैयार हूँ, पहले क्या नहीं सुना, महाराज नहीं रहे क्या ?
पिता जी.....

हरिसिंह—उन्होंने ने यवनों को गया से निकाल दिया, किन्तु
वे वापस नहीं आये; लड़ते गये लड़ते गये और अन्त

को इस वृद्धावस्था में भी बीसियों आततायियों को मृत्यु के घाट उतार कर वीर-गति को प्राप्त हुए ।

राघवदेव—(रोते हुए) पिता जी, पिता जी, हमें छोड़ गये अन्धकार में, आँधी में, तूफान में.....

रुलाई आ जाती है; आँखों पर हाथ रखे

रोते और लश्खड़ाते हुए चले जाते हैं ।

भारमली—अब कोई क्षण में आँधी आयगी, कौन कौन से विटप गिरेंगे, कौन जाने ! अपनी रक्षा भी करनी होगी, यह गिरेंगे, तो तू गिरेगी ।

तेज्जी से प्रस्थान

पट-परिवर्तन

हंसाबाई और कुमार चंड

चंड—यह तुम कहती हो माँ ?

हंसाबाई—हाँ, यह मैं कहती हूँ !

चंड—मैं स्वयं राज्य करना चाहता हूँ ?

हंसाबाई—करना क्या चाहते हो, कर रहे हों । राजा को क्या अधिकार प्राप्त होते हैं जो तुम्हें नहीं । प्रजा पर शासन तुम करते हो, न्याय-विचार तुम करते हो, सेना का प्रबन्ध तुम्हारे हाथ में है । रणमल तो नाम का सेनापति है, होता है, जो तुम चाहते हो । फिर कहो राज्य कौन करता है ?

चंड—यह सब तो मैं एक सेवक के रूप में करता हूँ । पिता जी ने स्वयं मेरे कंधों पर जो उत्तरदायित्व रखा, उसे मैं निभा रहा हूँ । जब महाराणा मोकल बालिग हो जायेंगे, राज्य का सब भार उन्हें सौंप कर मैं पृथक् हो जाऊँगा ।

हंसाबाई—वह बालिग होने ही न पायगा ।

चंड—इससे तुम्हारा क्या तात्पर्य है माँ ?

हंसाबाई—जो तुम्हारे मन में है ।

चंड—(उत्तेजित होकर) क्या कहा माँ, जो मेरे मन में है, मेरे मन में क्या है ? (जुँचे) मेरे मन में क्या है ? मैं तो एक

सेवक की भाँति सब काम कर रहा हूँ। राज्य ! यदि मैं राज्य चाहता तो.....ओह ! मैं क्या कहने लगा था।

इंसाबाई—नहीं, रुको नहीं, सब कुछ कह डालो तुम। मैं सब समझती हूँ, जानती हूँ।

चंड—क्या जानती हो, क्या समझती हो ?

इंसाबाई—मैं जानती हूँ तुम ने इतनी प्रजा-वत्सलता, न्याय-प्रियता और नीति-कुशलता का ढोंग क्यों रचा है ? आज मेवाड़ में न्याय प्रिय कुमार चंड को सभी जानते हैं। राजमाता तथा महाराणा मोकल को कौन जानता है ? वे तो तुम्हारे हाथ की कठ-पुतली हैं, खिलौने मात्र हैं। चाहे जिधर घुमाओ, चाहे जब तोड़ फोड़ डालो।

चंड—माता ! (गला भर आता है।) यह अभियोग ! इतना बड़ा अभियोग ! सँभाल लो अपना राज्य, सँभाल लो काँटों का यह यह ताज, यह विपत्तियों का भार ! तुम समझती हो मैं दिन रात अपने आप की, अपने स्वास्थ्य की सुध-बुध भुला कर, सोते जागते शासन की व्यवस्था का ध्यान केवल इसलिप रखता हूँ कि मुझे अपना उल्लू सीधा करना है। मैं कुटिल हूँ, मेरे मन में खोट है ? अच्छा था गरल का घूँट मुझे पिला देती, अच्छा था, मेरा गला घोट देती, अच्छा था तीक्ष्ण कटार मेरे सीने में भोंक देती, पर यह अभियोग, ऐसा कड़ा अभियोग तो

न लगाती। आज से मैं सेवक का पद भी छोड़ता हूँ। आप अपना राज्य सँभालिए।

चलते हैं, फिर मुबते हैं।

—एक बात कह जाऊँ माँ, मुझे राज्य की लालसा नहीं, अधिकार की आकांक्षा नहीं, किन्तु भूतपूर्व सेवक के नाते मैं आपकी सेवा को तैयार रहूँगा। मैं जानता हूँ अब आपको मेरी आवश्यकता नहीं, परन्तु जब कभी हो निःसंकोच बुला लीजिए।
सेवक विलम्ब न करेगा। प्रस्थान

रणमल का प्रवेश

रणमल—सब सुन रहा था, आपने ठीक ही किया।

हंसाबाई—मैंने ठीक किया ? कहो क्या यह सब ठीक हुआ ? (शून्य में देखते हुए) चंड ने अपने अधिकार छोड़ दिये !

रणमल—आप ने जिस नीति से काम लिया वह तो बड़े-बड़े नीतिज्ञों को भी न सूझ पाती। मैं होता तो इस भाँति, इस सुगमता से उन्हें राज्य छोड़ने के लिए उत्तेजित न कर सकता। मालूम होता है बहुत दुख हुआ।

हंसाबाई—(उसी तरह देखते हुए) चंड ने सब अधिकार छोड़ दिये। मैंने ऐसा नहीं सोचा था। अब शासन का प्रबन्ध कैसे होगा ?

रणमल—आप करेंगी। आप राजमाता हैं। आप स्वयं महाराणा की ओर से शासन करें और आपकी सहायता को आप का यह सेवक उपस्थित है।

हंसाबाई—और क्या हो सकता है। मुझे तो तुम पर ही भरोसा है। इस प्रकार शासन का प्रबन्ध हो कि चंड की अनुपस्थिति जनता को न अखरे। ऐसा न हो कि जनता विद्रोह का भंडा खड़ा कर दे।

रणमल—जनता—जनता की स्मरण शक्ति बहुत कमजोर होती है यहिन। वह भूलना अधिक जानती है, आप देख लेंगी कोई चंड को जानेगा भी नहीं। सब महाराणा और राजमाता के गुण गायेंगे।

हंसाबाई—तो जाओ घोषणा कर दो। कल से स्वयं गजमाता राजकाज की देख-भाल करेंगी।

रणमल—जो आज्ञा।

प्रस्थान

तेजी के साथ धाय का प्रवेश

धाय—छोटी बहू !

हंसाबाई—(चुप)

धाय—मैं क्या सुनती हूँ, बड़ा कुँवर जा रहा है ?

हंसाबाई—हाँ, वह अपनी इच्छा से जा रहे हैं।

धाय—अपनी इच्छा से जा रहे हैं या तूने उन्हें निकाल दिया है ?

हंसाबाई—वह मोकल के स्थान पर स्वयं राणा होना चाहते थे।

धाय—(उत्तेजित होकर) छोटा बहू, यह तू कहती है, विवेक रखते हुए भी यह तू कहती है। चंड स्वयं राज्य चाहता है। यह बात कहने से पहले लज्जा और ग्लानि से तुम्हारा मुँह बन्द नहीं हो गया, आत्मा ने तुम्हें फटकार नहीं बतायी, तुम्हारी जिह्वा ऐंठ नहीं गयी। कुँवर राज्य चाहता, तो न ले सकता था ?

हंसाबाई—माँ !

धाय—आज जो तू मेवाड़ की राजमाता बनी बैठी है, यह किस की कृपा है ? चंड चाहता तो क्या राज्य ही न ले सकता था ? राणा राज्य दे रहे थे, उसने न लिया। अपने प्रण पर अटल रहा। तुम सती होने लगी थीं, उस ने तुम्हें रोक दिया। नहीं तो आज, जहाँ बड़ी रानी चली गयी है, वहीं तुम भी चली जातीं। वह राज्य चाहता तो तुम्हें मरने देता। फिर उसे कौन अधिकार जमाने से रोक सकता था ? अधिकार जमाना कैसा ? अधिकार तो उस का ही था ! उस की सेवा का, उस के त्याग का तुम ने यह फल दिया। कहो अब उस के बाद शासन का काम कौन सँभालेगा ?

हंसाबाई—रणमल !

धाय—अच्छा, यह आग उसी की लगायी है। यह कुचक्र उसी का चलाया हुआ है। तुम्हारी आँखें न हों छोटी बहू, तुम चाहे देख कर भी न देखो, किन्तु मैं कहे देती हूँ, उसका मन साफ नहीं।

चंड जा रहा है, मैं कहती हूँ अब भी उसे मना लो । वह चला गया तो मोकल न रहेगा, हंसाबाई न रहेगी, सिसोदिया वंश न रहेगा.....खड़ा हो, हिलती नह। । तुम न जाओ, मैं जाऊंगी सिसोदिया वंश के हित के लिए जाऊंगी, महाराणा मोकल की रक्षा के निमित्त जाऊंगी और कुँवर को मना कर लाऊँगी ।

तेजी से प्रस्थान

हसाबाई—धाय क्या कह गयी, रणमल धोखा देगा । वह हमें हटा कर स्वयं मेवाड़ का शासक बन जायगा ? क्या ऐसा हो सकता है ? (शून्य में देखते हुए) क्या कृतघ्नता इतनी विनम्र, इतनी विनीत हो सकती है ?

उद्विग्नता से घूमती है ।

—किन्तु कुछ भी हो, राज्य रहे या जाय, अधिकार रहे या न रहे, चंड को मनाने न जाऊँगी, कभी भी न जाऊँगी ।

सोचते-सोचते चली जाती है ।

पट-परिवर्तन

दो नागरिक प्रवेश करते हैं ।

पहला —चंड चले गये, और अपने साथ ही मेवाड़ का सुख और शान्ति भी ले गये ।

दूसरा—सुना है ,माँझ के सुलतान ने बड़े आदर से उनका स्वागत किया, उनके निवास के लिए विशाल भवन देकर उन्हें अपने दरबार में एक उच्च-पद पर नियुक्त कर दिया ।

पहला —वीरों को किस बात की कमी है ? वे जहाँ भी जायें सम्मान उनके पाँव चूमता है । भाग्य तो मेवाड़ का खोटा है जिसके मुकुट से एक अमूल्य रत्न खो गया ।

दूसरा—वह स्वयं कहाँ गये ? उन्हें विवश कर दिया गया ।

पहला—हाँ, राजमाता ने उन्हें विवश कर दिया ।

दूसरा—वह मेवाड़ के शत्रुओं के हाथ में खेल रही है । वह नहीं जानती, उसने क्या कर दिया है, वह नहीं जानती वह क्या कर रही है । भगवान एकलिंग मेवाड़ की रक्षा करें !

पहला—अब तो दरबार में षड्यन्त्रों का राज्य है, नगर में अत्याचारों का शासन है । कहो, अब किस की धन-सम्पत्ति

सुरक्षित है, किस की मान-प्रतिष्ठा सुरक्षित है ? अब कौन खुले किवाड़ गहरी नींद सो सकता है ? वह उत्साह, वह खुशी कहाँ है ? मेवाड़ पर भय का साम्राज्य है और समस्त प्रदेश इस भाँति सहम गया है जैसे बाज को उड़ते देख कर पक्षी सहम जाते हैं ।

दूसरा—अरे वह देखो, सेनापति आ रहे हैं । शीघ्र चलो कहीं किसी और विपत्ति में न फँस जायँ ।

दोनों जल्दी जल्दी चले जाते हैं ।

रणमल अपने एक सैनिक के साथ आता है ।

रणमल—अजित ! पिता जी को मरे आज तीसरा दिन है । एक निमिष भी देर न करनी चाहिए ।

अजित—हमारी सेनाएँ तैयार हैं, केवल आपके इशारे की देर है । राठौर सैनिक अपने युवराज को उसका अधिकार दिलाने के लिये मंडोवर पर दूट पड़ेंगे ।

रणमल—और मेवाड़ की सेनाएँ ?

अजित—सब राठौर सेनापतियों के अधीन हैं ।

रणमल—कुमार चंड माँझ में हैं, सेनाओं पर अपना अधिकार है, महाराणा नाबालिग हैं, अब कौन है जो मेरे मार्ग की बाधा बन सकता है ? वह दिन शीघ्र आयगा जब मेवाड़ और मंडोवर एक राठौर-साम्राज्य के अधीन होंगे, और सिसोदियों का मन्त्र दूट जायगा ।

अजित—राघवदेव ?

रणमल—वह खेलवाड़ा में है ! इस से पहले कि उसे इन सब बातों की सूचना मिले उस का जीवन-दीप बुझा दिया जायगा । अजित, हम किसी को भी न छोड़ेंगे । शताब्दियों की इस दासता की बेड़ियाँ काट डालेंगे । सिसोदियों के बदले अब समस्त राजपूताने पर राठौरों का आधिपत्य होगा । इस बात के लिए मैंने कितना प्रयत्न नहीं किया ? कई रातें मैंने इसी सोच में बिता दी हैं । प्रधान मन्त्री के होते हुए, दोनों कुमारों के होते हुए, सेनापति का स्थान सँभालना क्या आसान बात थी ? राघवदेव को चित्तौड़ से बाहर कर देना क्या सुगम था और फिर चंड को अधिकार छोड़ कर माँझ में निर्वासितों का सा जीवन बिताने पर विवश करना क्या सरल था ? किन्तु मैंने सब किया । और उस का यह फल है कि मेरे समस्त साथी उच्च पदों पर नियुक्त हैं । क्या मंडोवर में ऐसा हो सकता था ?

अजित—आप के साथी आप के इंगित पर अपने प्राण निछावर करने को तैयार हैं कुमार !

रणमल—कहो, हंसाबाई को सन्देह तो नहीं हुआ ? मैंने बाघसिंह को नगर में यह अफवाह फैलाने की आज्ञा दी थी कि मेवाड़ पर यवन आक्रमण करना चाहते हैं । इसलिए सेना को लेकर स्वयं सेनापति सीमा पर जायेंगे ।

अजित—नहीं, राजमाता को सन्देह नहीं हुआ। वह इसी भ्रम में है कि यवनों के आक्रमण को रोकने की तैयारी हो रही है। यदि उसे ज्ञात हो जाय कि यह चढ़ाई उसके भाई के विरुद्ध की जा रही है तो वह न जाने क्या कर दे ?

रणमल—क्या करेगी ? वह चाहे भी, तो कुछ नहीं कर सकती। मेरे जाल में वह इस तरह जकड़ी हुई है कि निकलना कठिन है, असम्भव है, (धीरे से) किन्तु मैं चाहता हूँ वह न जाने, मैं चाहता हूँ वह भूली रहे, अभी समय नहीं आया। तुम जाओ, सेना को आज रात के पहले पहर ही यहाँ से चलने के लिए तैयार रहने का आदेश दे दो।

अजित—जो आज्ञा।

प्रस्थान

रणमल—सूरज छिप रहा है। धीरे धीरे अमृताचल की ओट में जा रहा है और रात भयानक अंधकार को लिये हुए बढ़ी आ रही है। किन्तु मुझे यह अंधकार पसन्द है। इसी अंधकार में मेरे कितने ही रहस्य छिपे हैं, कितने ही गुप्त भेद निहित हैं।

टोल पीटने की ध्वनि आती है।

—शायद बाघसिंह इधर ही आ रहा है।

बाघसिंह और टोल लिये हुए एक मुनादी
करने वाले का प्रवेश

—कहो. नगर में मनादी करा दी ?

बाघसिंह—हाँ महाराज, समस्त नगर में मुनादी करा दी है, कि मेवाड़ पर यवन आक्रमण करने की सोच रहे हैं। मेवाड़वासियों को अपनी रक्षा के हित, अपनी धन-समृद्धि की रक्षा के हित युद्ध के लिए तैयार रहना चाहिए।

रणमल—ठीक है, ठीक है। (मुनादी वाले को एक मुद्रा देकर) जाओ, हम तुम से बहुत प्रसन्न हैं।

ढोल वाला जाता है

—(बाघसिंह) सुनो बाघसिंह! मैं आज सन्ध्या को सेना लेकर प्रस्थान करूँगा। तुम मेरे पश्चात् इस रहस्य को खुलने न देना। तक मैं मंडोवर को जीत कर वापस मेवाड़ नहीं पहुँच जाता, तब तक किसी को यह ज्ञात न हो कि मैंने किधर चढ़ाई की ?

बाघसिंह—क्या आप मंडोवर में न रहेंगे ?

रणमल—नहीं, मुझे मंडोवर की मरुभूमि से मेवाड़ की उर्वरा, हरियाली भूमि अधिक पसन्द है। मैं अपने साम्राज्य का केन्द्र चित्तौड़ ही को बनाऊँगा।

बाघसिंह—फिर मंडोवर पर चढ़ाई करने से क्या लाभ ?

रणमल—तुम नहीं जानते, जाओ जैसे मैं कहता हूँ वैसे ही करो।

बाघसिंह—जो आज्ञा।

प्रस्थान

रणमल—(अपने आप) मैंने क्यों चढ़ाई की है, तुम क्या जानोगे बाघसिंह ? छोटी माँ ने हृदय में जो घाव लगाये हैं वे अभी नहीं भरे, अभी उन की जलन उसी प्रकार हृदय को जलाये जाती है । एक असह्य वेदना से मैं तड़पता रहता हूँ । यह जलन, उसी दिन समाप्त होगी, जब गविनी छोटी रानी इसी मूर्ख के कदमों पर झुककर दया की भिक्षा माँगेगी ।

पट-परिवर्तन

रात का पिछला पहर

रानी तारा काहा को अपनी छाती से चिपटाए पड़ी है,

पॉयते की ओर धरती पर दासी सो रही है ।

रानी—(चौंक कर) दासी, दासी !

दासी—(उठ कर) क्या बात है, महारानी क्या बात है ?

रानी—जाओ तुम मन्त्री को बुला लाओ ! हम सुरक्षित नहीं हैं, हम सुरक्षित नहीं हैं । अनिष्ट की आशंका मेरी नस नस में समायी जाती है । तुम जाओ, मन्त्री को बुला लाओ ! हम यहाँ नहीं रहेंगे, हम दोनों माँ बेटा कहीं चले जायेंगे, कहीं दूर चले जायेंगे ।

दासी—नहीं महारानी, भय की कोई बात नहीं । आप केवल डर गयी हैं ।

रानी—डर गयी हूँ—शायद मैं डर गयी हूँ । हाय ! मैंने कितना भयानक स्वप्न देखा !

दासी—स्वप्न !

रानी—मैंने देखा, ओह ! (दीर्घ निश्वास छोड़ती है ।) मैंने देखा अँधेरा है, चारों आर अँधेरा है, घटाटोप अन्धकार है और मैं काहा की अँगुली थामे चली जा रही हूँ, चली जा रही हूँ । मार्ग

नहीं दीखता, फिर भी बढ़ती जा रही हूँ। फिर भयानक आँधी आती है। विटप काँप उठते हैं, धरती डोल जाती है, आकाश रह रह कर आग फेंकता है। इस तूफान में कुँवर का हाथ मेरे हाथ से छूट जाता है। मैं चीखती हूँ। मैं अँधेरे में कुँवर के लिए चीखती हूँ।

दासी—भयानक स्वप्न है ! (सान्त्वना देते हुए) किन्तु, इसमें यथार्थता कुछ भी नहीं। हमारे कुँवर सौ वर्ष जियें। आज बाहर भक्कड़ चल रहा है और इसी लिए आपको ऐसा बुरा सपना आया है। आज प्रातः तो उनका राज्याभिषेक होगा।

रानी—मुझे राज्याभिषेक नहीं चाहिए। मैं ऐसे ही भली, मेरा बच्चा मेरी गोदी में बना रहे, मुझे और कुछ न चाहिए।

दासी—महारानी ! अधीर न हों। अभी कुछ घड़ियों के बाद समस्त मंडोवर में खुशियाँ मनायी जायँगी। उल्लास का नृत्य होगा। आप के कुँवर मंडोवर के राणा होंगे और आप राजमाता कहलायेंगी।

रानी—किन्तु यह भयानक काली रात, आँधी का यह अट्टहास, यह घन गर्जन, यह प्रलय का शोर, मेरा हृदय धड़क रहा है। तुम जाओ दासी ! मन्त्री को बुला लाओ !

दासी --अभी रात काफी है महारानी, और दिन भर आप व्यस्त रहेंगी, इसलिए सो रहें।

रानी—वह दिन आयगा भी या नहीं ! मुझे जैसे कोई खींचे लिये जा रहा है, खींचे लिये जा रहा है और कह रहा

है, वह दिन न आयगा, वह दिन न आयगा । वह देखो, बड़ी रानी जैसे ठहाका लगा रही है, हँस रही है । कह रही है, अब मेरा समय है, अब मेरी बारी है !

दासी—बड़ी रानी—वह तो मर गयी, सती हो गयी ।

रानी—हाँ, सती हो गयी, न होना चाहती थी । वह सती होने से पहले अपने कुँवर को देख लेना चाहती थी, पर मैंने उसे सती होने पर विवश कर दिया । मैंने उसे मर जाने पर, अपनी अन्तिम अभिलाषा साथ लिये हुए मृत्यु की गोद में सो जाने पर विवश कर दिया और अब दिन रात मेरी आँखों के सामने उसका भयानक मुख, तनी हुई भृकुटी, लाल लाल आँखें घूमती रहती हैं । मैं सुनती हूँ जैसे वह कहती है 'अब मेरी बारी है', 'अब मेरी बारी है' !

दासी—यह कुछ नहीं । आप का भ्रममात्र है, बाहर केवल आँधी चल रही है ।

रानी—(शून्य में देखते हुए) आँधी चल रही है ?

दासी—हाँ, आँधी चल रही है ।

रानी—मेरे हृदय में भी आँधी चल रही है । एक भयानक तूफान मचा हुआ है । सारी रात मुझे नींद नहीं आयी । मैंने सुना है, हंसा ने अपने राज्य में रणमल को ही सर्वे-सर्वा बना दिया है । यह उसने अच्छा नहीं किया । जिस पौधे को मैं कुचल कर फेंक देना चाहती थी, उसे ही उसने अपने स्नेह से सींचा है । किन्तु यह

साँप है मैं जानती हूँ । दूध पीकर भी काटेगा, डंक चला यगा ।

वायु के वेग से खिड़की का पट खुल जाता है, झिलमिला

कर दिया बुझ जाता है, एक दासी घबरायी हुई

प्रवेश करती है ।

दासी—(घबराई हुई आवाज में) महारानी भागिए ! महारानी भागिए ! सेनापति मारे गये, सेनापति मारे गये !

रानी—(आतंक से) सेनापति मारे गये ?

दासी—हाँ, नगर के द्वारों पर, गलियों में, बाजारों में सब जगह युद्ध हो रहा है ।

रानी—बिद्रोह हो गया है ?

दासी—नहीं ।

रानी—तो क्या हुआ है, कहो, जल्दी कहो ?

दासी—कुँवर रणमल ने आक्रमण कर दिया है ।

रानी—(दीर्घ-निश्वास छोड़ कर) मैंने सोचा था, मैं डरती थी। तो भागूँ, किधर भागूँ, हाथ पाँव फूल रहे हैं ।

बाहर से शोर सुनायी देता है

दासी—महारानी भागो ! महारानी भागो ! चलो मैं कुँवर को चठाती हूँ ।

रानी—हाँ चलो, भागो, उस निर्दयी के हाथों से कुँवर की जान बचाने के लिए, मैं भागूँगी—जंगलों, पहाड़ों की ठोकरें खाऊँगी । चलो, भागो ! न भाग सकी तो रणमल के हाथों उसके जीवन का

अन्त देखने से पहले मैं स्वयं अपने हाथों उसका गला घोट दूँगी।
चली जाती है।

बाहर कोलाहल बढ़ रहा है।

रणमल हाथों में तलवार लिए प्रवेश करता है।

रणमल—अधेरा है—शायद भाग गयी, किन्तु भाग कर
जायगी कहाँ ? अजित मशाल लाओ।

अजित मशाल लाता है, दूसरे सैनिक भी आ जाते हैं।

—कहाँ है अत्याचार की वह मूर्ति ? मुझ को अयोग्य,
निकम्मा, कायर और मूर्ख कहने वाली, अभिमानिनी, गर्विनी,
छोटी माँ ? आये और देखे इस मूर्ख के मस्तिष्क में कितनी बुद्धि
है, इस कायर की भुजाओं में कितना बल है। कहाँ है उसका वह
कुँवर, वह पाँच वर्ष का निर्बल तेजहीन बालक, जो आज मेरे
स्थान पर मंडोयर का राव बन रहा था ?

हाथों में बच्चों का शव लिये उन्मादिनी

की भौंति रानी का प्रवेश

रानी—लो यह है कुँवर ! तुम्हारे हाथों इसे मरता देखने के
बदले मैंने स्वयं इसे चिर-निद्रा में सुला दिया है। तुमने भागने के
सब द्वार बन्द कर दिये। तुम ने चाहा हमें बन्दी बनाओगे, हमारा
अपमान करोगे। तुम्हारी यह कामना पूरी न होगी। मैंने अपने
हृदय के टुकड़े को अपने हाथों मसल डाला, अपनी आँखों की
ज्योति को अपने हाथों नष्ट कर दिया, अपने घर के उजाले को
स्वयं अन्धकार में परिणत कर दिया—आज मैं माँ होकर भी डायन हो

गयी। देखो इसकी यह मुरझाई हुई सूरत, इसकी यह फटी-फटी आँखें, यह तुतलाने वाली बाहर को निकली हुई जिह्वा, यह निष्पन्द और निष्प्राण देह। मैंने इसका गला घोट दिया। जैसे पिशाच के हाथों देने के बदले मैंने पिशाचिनी होना स्वीकार कर लिया। मेरा पुत्र बन्दी होता, दास बनता, अपमान का आग में जलता। न, मुझे यह स्वीकार न था। वह मर गया, कुँवर होता हुआ मर गया, राणा होता हुआ मर गया, कुछ क्षण के लिए इसके प्राणों का मोह मेरे हृदय में डर उठा था; मेरे दिल में भय का संचार हुआ था; मैं भागने को तैयार हो गयी थी। किन्तु अब क्या डर है? मैं स्वयं कुछ क्षण की मेहमान हूँ। मैंने हीरे की कणी चाट ली है। विष मेरी नस नस में दौड़ रहा है। इतनी दूर सेना लेकर एक निरीह, निर्बोध बालक को बाँधने चढ़ दौड़े थे, लो बाँध लो! बन्दी बना लो!

बच्चे को उसके पाँवों पर पटक देती है।

और स्वयं अचेत होकर गिर पड़ती है।

सब स्तम्भित, अवाक्, स्तब्ध देखते रह जाते हैं।

पटाक्षेप

पञ्चम अंक

१

हंसाबाई और धाय

हंसाबाई—मैं क्या करूँ ? कुछ समझ में नहीं आता । तुम्हीं बताओ माँ, मैं तो विवश हूँ, असहाय हूँ !

धाय—तुमने, छोटी बहू, यह काँटे अपने हाथों बोये हैं ।

हंसाबाई—जले पर नमक न छिड़को माँ ! उत्थान में किस की आँखें अन्धी नहीं हो जाती ? किस के पर नहीं लग जाते, फिर मैं तो साधारण स्त्री हूँ । मैंने बुरा भी क्या किया ? यदि बहिन अपने भाई के साथ—उस भाई के साथ जो सौतेला है, जिसे उस की माँ ने निकाल दिया है, प्यार करती है तो क्या बुरा करती है ? यदि सौतेली बहिन, अपनी माँ के दुर्व्यवहार का परिचात्ताप करती हुई, निर्वासित भाई से सद्व्यवहार करती है तो क्या बुरा करती है ? उसे क्या मालूम कि वह विष-वृक्ष को अपने स्नेह से सींच रही है ? उसे क्या मालूम कि वह आस्तीन में साँप पाल रही है ?

धाय—मैंने कहा था, मैंने सावधान कर दिया था ।

इंसाबाई—किन्तु मैंने सुना नहीं। उस समय मैं अन्धी थी, बहरी थी, मुझे अपने महारानी होने का गर्व था, अपने राजमाता होने का गर्व था। अब कहाँ है वह गर्व? परिस्थितियों ने उसे पीस कर रख दिया है और असहाय, लाचार बेबस तुम्हारे सामने खड़ी हूँ। महाराणा परलोक सिधार गये और कुँवर! उसकी जान का भय दिन रात बना रहता है। कौन शत्रु है कौन मित्र है, समझ में नहीं आता। अपने पराये बन बैठे हैं। माँ, बताओ, सुझाओ, कहो, मैं क्या करूँ? कैसे मेवाड़ के इस रत्न की, सिसोदिया वंश के इस दीपक को रक्षा करूँ? यह न रहा तो अँधेरा हो जायगा; मुझे दंड दो, किन्तु इसे बचाओ, इसकी रक्षा करो।

धाय के पावों पर झुकती है।

धाय—(उठाकर छाती से लगाती हुई) छोटी बहू, यह क्या? क्या मेवाड़ की राजमाता, आज इतनी असहाय, इतनी दीन हो गयी कि धाय के आगे, एक साधारण धाय के आगे झुकने को तैयार है। (गला भर जाता है।) उठो मेरी बहू, मेरी छोटी बहू, मेरे जीते जी तुम्हें कोई हानि न पहुँचा सकेगा, महाराणा मोकल का बाल बाँका न कर सकेगा। मैं कवच बन कर उसकी रक्षा करूँगी, मैं ढाल बन कर शत्रुओं के प्रहारों को रोकूँगी।

इंसाबाई—(रोते हुए) मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ। माँ मेरा कोई

नहीं। माँ नहीं, बाप नहीं, भाई नहीं, स्वामी नहीं, ले देकर एक यही बच्चा है। कौन जाने वह—निर्दयी वह—जिसके आतंक से मंडोबर और मेवाड़ के वनों में पक्षी तक अपने घोंसले में छिप जाते हैं, कब मेरा अथवा मेरे बच्चे का जीवन-शीप बुझा दे ? मैं तुम से प्रार्थना करती हूँ, कोई युक्ति बताओ, जिससे हम इस महल से, इस राज्य से निकल भागें और तबतक कहीं छिपे रहें जब तक कुँवर बालिग न हो जाय, अपना अधिकार लेने के योग्य न हो जाय।

बाय—तुम भाग न सकोगी बहू ! भले ही तुम राजमाता हो और कुँवर महाराणा हैं, किन्तु वास्तव में तुम दोनों बन्दी हो। तुम्हारे हर काम की देख रेख होती है।

हंसाबाई—तुम सत्य कहती हो माँ ! (अपने आप से) मैं रानी हूँ, मेवाड़ के शासक की माँ हूँ !

वाटिका से मालिन के गाने की आवाज़ आती है

आ कोयल हम मिल-जुल गायें
गायें सुख के गान
पत्ता-पत्ता नाच रहा है
नाच रहे हैं प्राण

—गा, फूलों की दुनिया में विचरने वाली स्वतन्त्र मालिन !
खुश रहो कि तुम रानी नहीं, मेवाड़ के शासक की माँ नहीं।
तेरे पावों में अधिकार की बेड़ियाँ नहीं।

उद्विग्नता से घूमती है ।

धाय—बहू ! तुम उसे क्यों नहीं लिखती ! एक बार लिख दो, वह सिर के बल दौड़ा आयगा। वह महाराणा की रक्षा करेगा, तुम्हारी रक्षा करेगा !

हंसाबाई—मैं कैसे लिखूं, मैंने स्वयं अपना मार्ग रोक दिया है, स्वयं अपने पावों पर कुठार चलाया है।

धाय—यह सब भूल जाओ बहू ! तुम लिखो। चार पंक्तियाँ लिखो। पहुँचाने का प्रबन्ध मैं कर दूंगी।

हंसाबाई—यदि वह न आये ?

धाय—न आये, तुमने चंड को समझा ही नहीं। वह आयगा, अपने कर्त्तव्य की जंजीरों में बंधा, वह आयगा। मैं तो सोचती हूँ वह अब तक क्यों नहीं आया ? संकोच के मारे बैठ रहा होगा, वह आने को तैयार होगा; नहीं तो अपने भाई को, मेवाड़ के महाराणा को इस संकट में देखकर भी स्वामि-भक्त वह बैठा न रहता। तुम लिखो, पढ़ते ही अपने सहायकों के साथ चला आयगा।

हंसाबाई—लिखूं भी तो वह एक दिन में थोड़े ही आ सकेंगे। फिर इतने दिन क्या किया जाय। मोकल को कहाँ छिपाया जाय। अब वह सिंहासन पर रणमल के पास बैठता है, उसकी गोदी में बैठता है। किस तरह मैं छिपा लूं, उसके पास जाने से रोक दूं ?

धाय—बीमारी का बहाना कर दो और जब तक चंड की ओर से कोई उत्तर नहीं आता तब तक उसे बाहर न निकालो। मैं इस का प्रबन्ध कर दूँगी।

हंसाबाई—तुम ने देखा नहीं, रणमल की नीयत साफ नहीं। वह जब भी मोकल की ओर देखता है, उसकी दृष्टि उसके मुकुट पर जम जाती है। उसकी आँखों में लालसा काँपा करती है। मैं डर जाती हूँ।

धाय—मैं जानती हूँ उसके मन में क्या है ?

हंसाबाई—उसने मेरे भाई और माँ की हत्या कर दी। और फिर बहाना बना दिया, कह दिया—मैं उनकी मृत्यु न चाहता था। मैं तो केवल उन्हें मिलने गया था किन्तु उन्होंने शत्रु समझ कर मुझ पर आक्रमण कर दिया। मैं उसकी बात को सत्य नहीं मानती। हाय ! उसे यहाँ क्या प्राप्त नहीं था ? क्यों न उस से अपने छोटे भाई का सुख देखा गया ? (आँखें भर आती हैं।) उन बेवसों को उसने आत्म-हत्मा करने पर विवश कर दिया। (निश्वास छोड़ती है।) मैं उस पर प्रकट नहीं होने देती। मैं अपने व्यवहार में अन्तर नहीं आने देती, किन्तु माँ, तुम जानती हो, मेरे हृदय में कैसा बवंडर उठ रहा है, इस हत्यारे के प्रति मेरे हृदय में उपेक्षा की कैसी आग जला करती है ?

धाय—विलम्ब न करो छोटी बहू, पत्र लिखो। मैं उसे

तत्काल पहुँचाने का प्रबन्ध कर दूँगी ।

हंसाबाई—अच्छा लिख देखती हूँ । जब मनुष्य झूबने को होता है तो वह तिनके का भी आसरा ताकता है । (अपने आप) कुमार ! अपना गर्व, अपना अभिमान, छोड़ कर मैं तुम से रक्षा की भीख माँगती हूँ । चाहती थी, तुम्हारा दर्प चूर-चूर कर दूँगी । किन्तु तुम चट्टान की भाँति अटल खड़े हो और मेरा दर्प मिट्टी के खिलौने की तरह टूट चुका है ।

हंसाबाई बैठ कर लिखती है ।

धाय खड़ी देखती है ।

पट-परिवर्तन

महलों का एक उद्यान

मोकल एक पहिया दौड़ाता आता है,
उसके पीछे पीछे बालक हैं । पहिया गिर
जाता है । बालक उस पर झुकते हैं ।

पहला—अब बस करो, अब हमारी बारी है ।

दूसरा—तुम्हारी कहाँ, हमारी बारी है । अब हम दौड़ेंगे ।

तीसरा—जी ! तुम दौड़ोगे, दो बार तो दौड़े चुके तुम, हम
ने हाथ भी नहीं लगाया ।

चौथा—हाँ हाथ नहीं लगाया ! पहले पहल किसने बारी
ली थी ?

तीसरा—वह तो कुछ क्षण के लिए थी ।

चौथा—चाहे कुछ हो, चलाया तो था, और हम ने हाथ लगा
कर भी नहीं देखा ।

पाँचवाँ—(सब को परे हटा कर) और हम, हम, अब के
हमारी बारी है ।

मोकल—तुम पहले निर्णय कर लो, इतने में मैं एक चक्कर
लगा आऊँ ।

पहिया चलाता हुआ भाग जाता है ।

सब 'हमारी बारी है' 'हमारी बारी है'

कहते हुए उस के पीछे भागते हैं ।

अजित के साथ रणमल का प्रवेश

रणमल—भारमली का कुछ पता आया ?

अजित—वह खेलवाड़ा में है ।

रणमल—यह तो बहुत पहले की बात है । मैंने उसे पकड़ लाने के लिए जो आदमी भेजे थे, उन की कोई खबर आयी ? तुम्हें मालूम नहीं अजित, भारमली कैसे षड्यन्त्र खड़े कर सकती है ? उसका स्वतन्त्र रहना राठौरों के आधिपत्य के लिये कितना हानिकारक है ।

अजित—अन्तिम सूचना जो मिली है, उस से यह पता चला है कि वह कुमार राघव के पास चली गयी है और उन के ही आश्रय में खेलवाड़ा के दुर्ग में रहती है ।

रणमल—राघव के आश्रय में चली गयी ? भारमली ! मैं देखूँगा तू मुझ से कहाँ भाग सकती है ; कब तक भाग सकती है । तू संसार के किसी कोने में चली जा, मेरे प्रयत्नों का जाल तुम्हें वहाँ से भी बाँध कर ले आयगा । राघव के पास—यदि राघव न रहा तो कहाँ जायगी । अजित !

अजित—महाराज !

रणमल—बाँस को ही काट दो ।

अजित—समझा नहीं महाराज !

रणमल—न बाँस रहेगा, न बाँसुरी बजेगी (उसके कान में कुछ कहता है ।) तुम सैनिकों के साथ भेस बदल कर नगर में

छिप जाना और फिर तत्काल दुर्ग पर अधिकार करके भारमली को गिरफ्तार कर लाना ।

अजित—सुना है राघव मांडू गये हैं । कोई षड्यन्त्र करना चाहते हैं ।

रणमल—ज्यों ही वहाँ से खेलवाड़ा पहुँचे, पोशाक पहुँचा देना और उन दोनों को साथ भेज देना ।

अजित—ऐसा ही होगा । किन्तु पोशाक क्या कह कर भेजी जाय ।

रणमल—बहाना बना देना कि महाराणा मोकल के जन्म दिन की खुशी में भेजी गयी है ।

अजित—जो आज्ञा ।

प्रस्थान

रणमल—(आकाश की ओर) राघव ! राघव ! तुझे दंडभोगना होगा, मेरे और भारमली के बीच कूदने का दंड भोगना होगा; विरुद्ध षड्यन्त्र करने का दंड भोगना होगा । मैं षड्यन्त्रों से नहीं डरता । इन से पहले कि तेरे मस्तिष्क में उनकी कोई रूप-रेखा बने तेरा मस्तिष्क ही न रहेगा ।

पहिया दौड़ाते हुए मोकल का प्रवेश

पोछे अन्य बालक भागते आते हैं,

नेपथ्य के पास जाकर पहिया गिर पड़ता है ।

लड़के उस से पहिया छीनते हैं, वह नहीं देता ।

मोकल—(नेपथ्य से) मामा, मामा !

रणमल धीरे-धीरे जाते हैं ।

धाय प्रवेश करती है ।

धाय—छाया की भाँति मैं तुम्हारा पीछा करूँगी; नियति की तरह तुम्हारे सिर में डराऊँगी । रणमल ! तू लालसा की आँखों से मोकल को देखता है, तेरी आँखों में हिंसा है, किन्तु आज के बाद तू मोकल की छाया को भी न पा सकेगा ।

नेपथ्य में—मेरा मुकुट दे दो, मेरा मुकुट दे दो ।

धाय—(नेपथ्य की ओर देखती हुई) ऐं ! तूने मेवाड़ का राज-मुकुट अपने सिर पर रख लिया । तुम्हारा यह साहस; तुम्हारी इतनी स्पृहा ! राजवंश दुर्बल है इसीलिए न, किन्तु जैसे तूने षड्यन्त्र से यह सत्ता प्राप्त की है, उसी तरह यह तुम से छीन ली जायगी (दासियों से) तुम वहाँ जाकर छिप रहो, मैं अवसर मिलते ही मोकल को लेकर भागूँगी, ठोकर खाकर गिर पड़ूँगी और तुम मोकल को लेकर महलों में भाग जाना । राठौर की नीयत कुछ अच्छी मालूम नहीं होती । वह देखो, वे सब इधर ही आ रहे हैं, इस लिए छिप जाओ ।

सब छिप जाती हैं

रणमल मोकल का ताज सिर पर रखे प्रवेश करता है ।

पीछेपीछे मचलता हुआ मोकल आता है ।

मोकल—मेरा मुकुट दे दो मामा, मेरा मुकुट दे दो ।

रणमल—तुम खेल रहे हो, यह मुकुट गिर जायगा, खराब हो जायगा ।

मोकल—(मचलता है ।) मेरा मुकुट, मेरा मुकुट !

रणमल—(धीरे-धीरे, जैसे अपने आप से) आज कुछ क्षण के लिए मेवाड़ का मुकुट अपने सिर पर रखने की लालसा इतनी प्रबल क्यों हो उठी ? इसे किसी समय भी लिया जा सकता है । चाहूँ तो अभी ले लूँ ।

मोकल की ओर बढ़ता है ।

—आओ तुम मेरे पास आओ ।

मोकल—नहीं, मैं तुम्हारे पास नहीं आता ।

रणमल—तो मैं मुकुट न दूँगा ।

मोकल—मैं तुम से लड़ूँगा ।

रणमल—(मुसकराता हुआ) कैसे लड़ोगे ?

मोकल—तलवार से लड़ूँगा, सेना से लड़ूँगा, मेरा मुकुट दे दो ।

रणमल—(भृकुटी तन जाती है ।) इस नन्ही सी जान में इतना गर्व, जिसे अभी अँगुलियों में मसल सकता हूँ, इस छोटी सी जिह्वा में इतनी तीक्ष्णता, जिसे अभी तालू से खींच सकता हूँ (हँसता है ।) आओ मेरे पास आओ ।

मोकल—(पीछे हटता है ।)

रणमल—(इधर उधर देख कर) कोई नहीं, कोई नहीं । लड़के दूर खेल रहे हैं, सेवक उन के कौतुक देखने में निमग्न हैं, माली अपनी झोंपड़ी में चला गया है । सूरज पर बादल छा गये हैं, आकाश की आँखें बन्द हो गयी हैं (एक हिंस्र ज्वाला आँखों में चमक उठती है ।] बड़ कर मोकल को उठाता है ।

मोकल—माँ, माँ ! (मचलता है, और चीखता है ।)

धाय निकलती है ।

धाय—क्या है बेटा, क्या बात है ?

रणमल धाय को देख कर मुसकराता है,
और मुकुट मोकल के सिर पर रख देता है ।

रणमल—[खिसियाना होकर] लो लो, रोओ मत !

मोकल—माँ, माँ !

धाय उसे गोद में उठा लेती है ।

धाय—माँ, मैं जाऊँगा, माता जी के पास जाऊँगा ।

धाय—चलो मेरे लाल ! तुम्हारी माता प्रतीक्षा कर रही होगी !

मोकल को लेकर चली जाती है ।

रणमल—फिर निकल गया, फिर अवसर निकल गया, किन्तु,
कब तक ? अन्त को एक दिन...

नेपथ्य में किसी के गिरने तथा चीत्कार का शब्द

धाय—(नेपथ्य से घबराई हुई आवाज में) कोई आइयो, कोई

दौड़ियो मोकल अचेत हो गये, महारणा अचेत हो गये ।

रणमल चौकता है, धीरे धीरे जाता है ।

रणमल—(नेपथ्य में) क्या हुआ, कहाँ है मोकल ?

धाय—(नेपथ्य में) उस को चोट आ गयी । दासियाँ उसे महलों में ले गयीं । राज-वैद्य को बुलाओ ।

रणमल—(नेपथ्य में) कैसे चोट आ गयी ?

धाय—(नेपथ्य में) लिए जाती थी कि ठोकर खा कर गिर पड़ी । उस के चोट आ गयी और अचेत हो गया । तुम बुलवाओ, राज-वैद्य को बुलवाओ ।

रणमल तेज़ी के साथ प्रवेश करता है,

कुछ दूर चल कर रुकता है, नेपथ्य

की ओर देख कर ताली बजाता है ।

—ओ, श्री ।

भागते हुए एक सेवक का प्रवेश

—जाओ राज-वैद्य को बुला लाओ । कहो, शीघ्र आये; महाराणा को चोट लग गयी है ।

सेवक का प्रस्थान

—यह ठीक है, वैद्य द्वारा ही यह काम हो ।

लँगहाती हुई धाय का प्रवेश

धाय—तुम जाओ, तुम स्वयं जाओ ।

रणमल—(सोच कर) हाँ मुझे ही जाना चाहिए ।

तेज़ी से प्रस्थान

घाय—अब तुझे उस की शक्त भी दिखायी न देगो पिशाच !
महाराणा महलों में सुरक्षित रहेंगे, कोई उन के पास न फटक
पाएगा ।

लँगड़ाते हुए प्रस्थान

पट-परिवर्तन

माँझ में कुमार चंड का निवास स्थान
चंड और राघव बातें करते हुए प्रवेश करते हैं ।

चंड—मैं भी मनुष्य हूँ राघव, एक निर्बल मनुष्य ! देवता नहीं मैं ।

राघव—अधम, नीच और स्वार्थी लोगों से भाई, आप बहुत ऊँचे हैं किन्तु फिर भी आप को इस तरह चित्तौड़ छोड़ कर न चले आना था ।

चंड—वही मैंने कहा राघव ! मैं मनुष्य हूँ । इतने बड़े अपमान के पश्चात् कोई देवता ही चित्तौड़ में रह सकता था ।

राघव—किन्तु भाई.....

चंड—मं तुम्हें क्या बताऊँ राघव, जब छोटी माँ ने मुझ पर यह अभियोग लगाया । जब उसने कहा तुम महाराणा होना चाहते हो, मोकल को अपने मार्ग से हटाना चाहते हो, उस समय मेरी क्या दशा हुई । धरती मेरे पाँवों के नीचे से खिसकती हुई दिखायी दी । सिर पर सहस्रों वज्र टूटते हुए प्रतीत हुए । इतना बड़ा अभियोग राघव । और फिर मुझ पर, जिसने राज्य की अक्रांता ही नहीं की । कभी स्वप्न में भी इच्छा नहीं की ।

समझ और सोच मेरा साथ छोड़ गये और उसी सन्ध्या को राव रणमल को राज्य का सब काम सौंप कर मैं वहाँ से निकल आया। चित्तौड़ से बाहर निकल कर मैंने सुख की एक साँस ली। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे अब तक मैं आग पर चल रहा था। यहाँ आकर मेरे हृदय को ठंडक मिली, शान्ति मिली। भील सरदार मेरे साथ आये, मैंने रोका भी, वह न रुके। मांडू के सुलतान ने कोई नाता न होने पर भी आश्रय दिया और यह जागीर दी। किन्तु माँ ने, जिसके लिये मैं प्राणों को भी कोई महत्त्व नहीं देता था, मुझ पर इतना बड़ा अभियोग लगा दिया। फिर तुम कहते हो मुझे चित्तौड़ न छोड़ना चाहिए था।

राघव—किन्तु भाई आपने परिस्थितियों पर विचार नहीं किया। आप का स्वच्छ हृदय माँ के द्वारा लगाया गया अभियोग सुन कर तड़प उठा। आपने चित्तौड़ छोड़ दिया। यह न सोचा आप के आ जाने से चित्तौड़ पर क्या बीतेगी।

चंड—मैं विवश था। सेवक का काम सेवक रहने ही में है, स्वामी बनने में नहीं।

राघव—भाई आप तो महान हैं। मैं अधम आप को कर्तव्य का पाठ क्या पढ़ाऊँगा, किन्तु जिस प्रकार अपने राजा को विपत्ति में देख कर प्रजा का एक साधारण व्यक्ति भी उसकी रक्षा कर

सकता है, इसी प्रकार आप भी जाकर रणमल को देश से निकाल सकते हैं ।

चंड—बिन बुलाये भाई मैं यह नहीं कर सकता । यद्यपि मैंने सेवकाई छोड़ दी है । यहाँ मांडू में एक निर्वासित का जीवन बिता रहा हूँ । फिर भी आज्ञा होने पर मैं स्वामी के लिए अपनी जान तक भी निछावर कर सकता हूँ । आज यदि छोटी माँ कहें तो मैं एक रणमल क्या, समस्त राठौरों को चित्तौड़ से भगा दूँ । किन्तु उनकी आज्ञा बिना उनकी व्यवस्था में मैं कैसे दखल दे सकता हूँ ?

राघव—आप को ज्ञात होगा, राजमाता स्वयं संकट अनुभव कर रही हैं । जाने उन्होंने क्यों अभी तक आप को नहीं बुलवाया ।

चंड—मैंने सब कुछ सुना है । रणमल के षड्यन्त्रों का हाल सुना है, उसकी कूटनीति का हाल सुना है और सुना है कि बाप्पा रावल के सिंहासन पर इस समय राठौर राज्य कर रहा है । उसके अत्याचारों की, जनता की बेबसी की कहानी सुन कर मेरा रक्त खौल उठा है, किन्तु मैं विवश हूँ ।

राघव—क्या आपने पिता जी को वचन न दिया था ?

चंड—क्या ?

राघव—कि आप महाराणा के बालिग होने तक राज्य का काम चलायेंगे ।

चंड—हाँ किया था ।

राघव—फिर यह आप का कर्तव्य था कि आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते ।

चंड—भाई, तुम एक बात भूल जाते हो । सिंहासन का अधिकार छोड़ने के साथ ही मेरा अपना अस्तित्व कुछ नहीं रह जाता । मैं राज्य का अधिकारी नहीं, केवल एक सेवक हूँ । पहले पिता जी का सेवक था, अब राजमाता का सेवक हूँ और जब स्वामी की दृष्टि फिर जाय तो सेवक का कर्तव्य यही रह जाता है कि वह सब कुछ छोड़ कर अलग हो जाय ।

राघव—चाहे उसमें स्वामी का अहित हो ।

चंड—यह विचारना सेवक का काम नहीं ।

राघव—भाई मैं तुम से छोटा हूँ, मेरी बुद्धि भी छोटी है, किन्तु मैं इतना समझता हूँ, कि आप के पुखों का राज्य दूसरों के हाथ में चला जा रहा है, आप बैठे, सत्य और असत्य, पुण्य और पाप, ईमानदारी और बेईमानी पर विचार करते रहेंगे ।

चंड—मैंने मेवाड़ को त्यागा नहीं । जब भी मेवाड़ के राणा तथा राजमाता को मेरी आवश्यकता हो, मैं सब अपमानों को भूल कर चला जाऊँगा । अपने प्राणों का मोह छोड़ कर मेवाड़ के मान हेतु लड़ूँगा । वे बुलायें तो सौ बार जाऊँगा, चाहे मैं तिरस्कृत होकर

आया हूँ, अपमानित होकर आया हूँ—हाँ, अनधिकार चेशा में न करूँगा

सेवक का प्रवेश

सेवक—महाराज, चित्तौड़ से राजमाता का भेजा हुआ दूत आया है।

चंड—बुला लाओ !

राघव—उन्होंने आप को बुलाया होगा। मैं पहले ही कहता था, उन्होंने आपको बुलाया होगा।

दूत का प्रवेश। अभिवादन करके एक चिट्ठी देता है।

चंड पढ़ते हैं।

चिरंजीवी चंड,

केवल दो शब्द लिखूँगी, यद्यपि मैंने वह अधिकार खो दिया है, किन्तु फिर भी और कुछ लिखने का समय नहीं। इस समय मेवाड़ का राज-मुकुट, मेवाड़ का महाराणा, राजमाता, मेवाड़ का अस्तित्व तक सङ्कट में है। मर और अँधेरा है, केवल तुम्हारी ओर से प्रकाश की एक हल्की सी रेखा आती है। अपने लिए तो मैंने वह आशा भी खो दी है किन्तु मेवाड़वासियों के लिए, उस अबोध बालक के लिए, मैं तुमसे सहायता की भीख माँगती हूँ। तुम वीर हो, सहृदय हो, मेरे लिए न सही अपने मेवाड़ के लिए आओ—शीघ्र ! फिर आने से कुछ न बन सकेगा।

तुम्हारी दुखी माँ

हंसाबाई

चंड—इन पंक्तियों के पीछे भाई कितनी व्यथा छिपी है !

राघव—माँ बहुत दुखी प्रतीत होती हैं !

चंड—(दूत से) जाओ, तुम राजमाता से कह दो कि वह चिन्ता न करें । किसानों में खैरात बाँटने के बहाने वे दुर्ग के आस-पास के गाँवों में प्रतिदिन जाना आरम्भ कर दें । दीपमाला की सन्ध्या को मैं चित्तौड़ के बाहर गोंसुंड़ा के मन्दिर में उनसे मिलूँगा ।

दूत का प्रस्थान

—(सेवक से) तुम जाओ भील-सरदार को बुला लाओ (राघव से) मैं भीलों को वापस भेज दूँगा कि वे अपने बाल-बच्चों को देखने के बहाने चित्तौड़ चले जायँ और फिर वहाँ रह कर दुर्ग के फाटकों पर पहरदारों के रूप में भरती होने का प्रयास करें । दीपमाला के दिन मैं स्वयंसेना लेकर प्रस्थान करूँगा और उस दिन राठौरों के अत्याचार का खात्मा हो जायगा । तुम निश्चिन्त होकर अपनी जागीर पर जाओ ।

राघव—जो आज्ञा !

प्रणाम करने के पश्चात् राघवदेव का प्रस्थान

चंड मस्तक पर हाथ रखे सोचते हैं ।

पट-परिवर्तन

खेलवाड़ा में राघवदेव का राजभवन

भारमली और राघवदेव

भारमली—तुम नहीं जानते, नहीं समझ सकते किस बेचैनी से मैंने ये दिन काटे हैं। तुम पूछते हो मैंने अपना प्रण क्यों तोड़ा ? तुम्हारे महल में क्यों चली आयी (दीर्घ निश्वास छोड़ती है ।) तुम्हें क्या बताऊँ ? मैं कैसे अपने आपको अब तक रोक सकी हूँ। किन्तु आज तो हृद हो गयी। मैंने ऐसी अनहोनी बातें देखीं—ऐसी अनहोनी ! कि मैं अपने क रोक न सकी। कुमार ! कोई विशेष विपत्ति तुम पर आने वाली है। प्रातः से अपशकुन हो रहे हैं।

राघव—हँसता है।

भारमली—तुम हँसते हो ! उस नन्हें बालक की भाँति, जो अग्नि की ज्वाला को देख कर हर्ष से बावला हो जाता है, नहीं जानता इस में जलाने की शक्ति भी है, किन्तु जरा मेरे चेहरे की ओर देखो, यह चिन्ता से कितना सूख गया है, इन आँखों को देखो, इनमें कितनी जागृत रातें छिपी पड़ी हैं। और इस हृदय पर हाथ रखो, यह कैसा धड़क रहा है ?

राघव—भारमली, भारमली, तुम्हें क्या हो गया है, तुम पागल हो गयी हो ?

भारमली—दिन को उल्लू बोलते हैं, श्वान रोते हैं, सियार एक विचित्र प्रकार का चीत्कार करते हैं, आकाश का रंग रक्त जैसा लाल रहता है। अनहोनी बातें हो रही हैं। यह सब अशुभ लक्षण हैं। यह किसी की मृत्यु की सूचना देते हैं, किसी महान व्यक्ति के निधन की ओर संकेत करते हैं।

राघव—क्या कभी आगे उल्लू नहीं बोले, श्वान नहीं रोये, बिल्लियाँ नहीं चिल्लाईं, सियार नहीं चीखे। प्रकृति सदैव अपने मार्ग पर चलती रहती है, यह हम ही हैं जो अपने मन के विकारों के अनुसार अर्थ निकालते रहते हैं।

भारमली—और सपने, यह भयानक सपने, जो मैंने इन दिनों देखे। मैंने देखा, मेरे कमरे में टेंगा हुआ तुम्हारा चित्र गिरा और टुकड़े टुकड़े हो गया और उस से रक्त की नदियाँ बह निकलीं। मैं चौंक कर उठी। उसी समय विजन में उल्लू बोलने लगा। हृदय जोर से धक-धक करने लगा। सारी रात मैं सो न सकी। रह-रह कर वही स्वप्न आँखों के सामने आता रहा। मैं तुम्हारे कुशलपूर्वक आने की प्रार्थना करती रही।

कुमार हँसता है

—फिर एक दिन मध्याह्न के समय मैं लेटी हुई थी कि झपकी आ गयी। मैंने देखा एक मरुस्थल है और उसमें तुम भागे जा रहे हो, तुम्हारे शरीर पर घाव ही घाव हैं और

मरुस्थल की धरती रक्त से लाल हो रही है। मेरा शरीर काँप गया। सारा दिन मैं बेचैन रही, रात सपने में मृत राणा दिखाई दिये। यह सब अशकुन ! मैं घबरा गयी—मैं रुक न सकी।

राघव—किन्तु देखो, मैं कुशलता पूर्वक आ गया हूँ।

भारमली—तुम आ गये हो, इस बात से मैं प्रसन्न हूँ, किन्तु देखो मेरी दायीं आँख प्रातःकाल से फड़क रही है, मैं घबरा कर आने लगी तो धिल्ली मेरा मार्ग काट गयी, मैं फिर वापस चली गयी। फिर आने लगी तो एक गिद्ध चीख गठा। फिर तीसरी बार आयी तो मार्ग में एक मृत व्यक्ति की अर्थी मिली।

एक सेवक का प्रवेश

एक सेवक—महाराज चित्तौड़ से राजदूत आये हैं और आप के लिए पोशाक लाये हैं

राघव—पोशाक ?

सेवक—हाँ महाराज ! महाराणा मोकल के जन्म दिन की खुशी में राजमाता की ओर से भेजी गयी पोशाक।

राघव—उन्हें बिठाओ, मैं आया।

भारमली—मुझे खटका है, मेरा दिल काँप रहा है, आशंका मेरी नस-नस में समायी जाती है। आप आज कहीं न जायें।

राघव—भारमली क्या कहती हो, क्या मैं जागीर के कामों से हाथ खींच लूँ। मैं सात दिन के बाद आया हूँ। कितनी ही बातें मुझे देखनी हैं, कितनी ही जगह मुझे जाना है।

भारमली—आज न जायँ कुमार, मुझे आज एक ज्योतिषी ने बताया है। आज के दिन आप कहीं न जायँ।

राधव—भारमली ! तुम एक राजपूत को डराती हो। उसे मृत्यु से भय दिलाती हो। मृत्यु ही तो उसका प्रधान खेल है। तलवारों की झंकारों में वह इसी से तो खेलता है। किन्तु तुम गायिका हो न, एक कोमल-हृदय कोमलांगी गायिका, तुम में राज-पूतनी का दिल कहाँ ?

प्रस्थान

भारमली—कुमार, कुमार !

किवाड़ तक उस के पीछे जाती है।

पट-परिवर्तन

खेलवाड़ा के एक मकान का कमरा

पिछली दीवार की खिड़की से एक व्यक्ति बाहर की ओर
देख रहा है। किवाड़ पर दस्तक होती है। वह
नहीं सुनता, फिर जोर से दस्तक होती है।

वह —(मुड़कर) कौन है ?

—मैं हूँ, दरवाज़ा खोलो।

दरवाज़ा खोलता है, हरिसिंह प्रवेश करता है।

वही व्यक्ति—अरे, तुम किधर से ? यह क्या हाल बनाया है ?

हरिसिंह—(पसीना पोछता हुआ) चित्तौड़ गया था, वहीं से
आ रहा हूँ। बड़ी कठिनाई से यहाँ पहुँच पाया हूँ। इतनी भीड़!
आज बात क्या है ?

जाकर खिड़की में देखता है

वही व्यक्ति—कुमार कत्ल कर दिए गए ?

हरिसिंह—(मुड़कर) कौन कुमार ?

वही व्यक्ति—कुमार राघव

हरिसिंह—(चौंक कर) ऐं, कुमार राघव ! किसने उनकी
हत्या की ? कौन ऐसा हत्यारा है जिसे ऐसे प्रजा-वत्सल,
न्याय-शील शासक से द्वेष था। आकाश से आग की वर्षा
होगी और समस्त नगर उसमें जल उठेगा। धरती अपना

गर्त खोल देगी और ये लोग, ये सब कृतघ्न लोग, उस में समा जायेंगे ।

वही व्यक्ति—प्रजा में से किसी ने उनकी हत्या नहीं की !

हरिसिंह—तो फिर किसने की ?

वही व्यक्ति—उस ने, जो मेवाड़ पर भय का राज्य कर रहा है !

हरिसिंह—मेवाड़ पर तो महाराणा मोकल राज्य कर रहे हैं । राजमाता राज कर रही हैं । क्या विमाता की द्वेषाग्नि कुमार चंड को निर्वासित करके शान्त न हुई थी जो.....

वही व्यक्ति—राजमाता की आज्ञा से हत्या नहीं हुई ।

हरिसिंह—तो फिर किसकी आज्ञा से हुई ?

वही व्यक्ति—(धीरे से, रहस्य भरे स्वर में) रणमल की आज्ञा से । वास्तव में राज्य तो वही करता है । महाराणा मोकल और राजमाता तो पुतलियाँ हैं, जिन्हें जैसे वह चाहता है नचाता है । अब तो किसी दिन तुम सुन लोगे महाराणा मोकल की हत्या—मेवाड़ पर राठौर का शासन !

हरिसिंह—और युवराज ?

वही व्यक्ति—चंड ? वे धर्मसूत्र में बँधे हैं, वे मेवाड़ न जायेंगे । राघव का डर था सो उन्हें इस तरह मार्ग से हटा दिया गया, रहे बालक राणा । उन का क्या है ? किसी क्षण भी वह मृत्यु की गहरी खोह में फेंक दिये जा सकते हैं ।

हरिसिंह—भगवान एकलिंग मेवाड़ की रक्षा करें ।

वही व्यक्ति—अब स्वयं लकुटीश ही रक्षा करें तो कुछ हो सकता है। लक्षण तो बुरे हैं।

हरिसिंह—कुमार का बध हुआ कैसे ? कुमार कहाँ थे उनके सैनिक कहाँ थे।

वही व्यक्ति—अभी कल कुमार माँझ से आये थे। वहाँ शायद बड़े भाई से मिलने गये थे। आज दो दूत महाराण मोकल के जन्म-दिन की खुशी में चित्तौड़ से एक पोशाक लाये और कहा कि राजमाता ने इसे भेजा है। मातृ-भक्त, स्वामि-भक्त कुमार ने ज्यों ही अपनी दोनों भुजाएँ चोले में डालीं कि उन नीचों ने अपने भयानक छुरे उन के शरीर में भोंक दिये।

हरिसिंह—शिव, शिव ! उन कायरों को किसी ने पकड़ा नहीं ?

वही व्यक्ति—वहाँ पकड़ता कौन ? राठौर सेनाएँ गुप्त रूप से खेलवाड़ा में प्रवेश कर चुकी थीं, दुर्ग पर उन्होंने आक्रमण कर दिया। सेवक कुमार के मृतक शरीर और भारमली के साथ भागे। भारमली पकड़ ली गयी और कुमार की अर्थी अब ले जाई जा रही है।

हरिसिंह—(आश्चर्य से) भारमली—उसे तो कुमार ने महलों में आने से रोक दिया था। फिर वहाँ क्यों गयी थी।

वही व्यक्ति—शायद उसे इस षड्यन्त्र की आशंका हो गयी थी और वह कुमार को सावधान करने गयी थी।

हरिसिंह—(निश्वास छोड़ कर) उसी के लिए तो यह सब कुछ

हुआ, यह कुमार की असामयिक मृत्यु भी ! अब कुमार को पितृदेवः की पदवी मिलेगी, बप्पा रावल के वंश में और किसकी ऐसी मृत्यु हुई । आज के दिन घर घर उनकी पूजा हुआ करेगी ।

वही व्यक्ति—और समस्त जागीर में ऐसा विद्रोह उठेगा जो दबाये से न दब सकेगा, जो आततायियों को, उनके अत्याचारों को, जड़ से उखाड़ कर ही शान्त होगा ।

हरिसिंह—(घुब कर) मैं जाता हूँ । मैं चैन न पा सकूँगा । मैं खेलवाड़ा को राठौरों के अधीन होता न देख सकूँगा । प्रजा में जोश है, लोहा तप रहा है, अभी चोट पड़नी चाहिए ।

प्रस्थान

वही व्यक्ति—ठहरो, मैं भी आया, तुम जाओगे तो मैं कब पीछे रह सकूँगा ।

प्रस्थान

पट-परिवर्तन

ॐ मेवाड़ में यह रिवाज था कि जब राज-वंश में किसी की अचानक तथा असामयिक मृत्यु हो जाती थी तो उसे पितृदेव की पदवी मिल जाती थी और घर घर उस की पूजा होती थी ।—‘टाड राजस्थान’

दीपमाला की सन्ध्या

चित्तौड़ के एक फाटक पर दो पहरेदार

पहला—युवराज नहीं आये। यह अत्याचार अब असह्य हो रहा है। कुचक्रों की बेड़ियों में जकड़ा हुआ मेवाड़ आर्तनाद कर उठा है।

दूसरा—धीरे-धीरे बातें करो कोई सुन लेगा।

पहला—भाई, अब सहा नहीं जाता। किसी बहिन बेटी की इज्जत सुरक्षित नहीं। अत्याचारियों की क्रूरता के कारण मेवाड़ की ललनाएँ आत्म-हत्याएँ कर रही हैं। दिन-दहाड़े डाके पड़ते हैं। जहाँ खुले दरवाजे कोई न आता था, वहाँ दिन को भी लूट का बाजार गरम रहता है।

दूसरा—और डाकू कहीं बाहर से नहीं आते—रक्षक ही भक्षक हैं!

पहला—आज युवराज के आने का दिन था।

दूसरा—किन्तु वह अभी तक नहीं आये। सूरज अस्ताचल में छिप गया है; अमावस की रात अपने अन्धकार को लिये बढ़ी चली आ रही है; दुखों को भूल कर भी लोग बरबस दीपमाला का आयोजन कर रहे हैं। आज जाने

कितना मदिरा-पान होगा । जनता के रुपये का कितना दुरुपयोग होगा । भोले-भाले निरीह नागरिकों पर कितना अत्याचार होगा ?

पहला—बस प्याला भर चुका है, कोई चाण को छलका ही चाहता है ।

दूसरा—हमारी ओर से सब प्रबन्ध हो गया है । इस समय हमारे दो हजार व्यक्ति दुर्ग में आ चुके हैं और विश्वस्त स्थानों पर लगे हुए हैं । दुर्ग के सब फाटकों पर अपने आदमी हैं । अब तो केवल उन के आने की देर है । सलवारें हमारे म्यानों में तड़प रही हैं, आज रात आततायियों के रक्त से इन की प्यास बुझेगी—केवल युवराज के आने की देर है ।

पहला—और यदि वे न आये ।

दूसरा—न आये ! यह तुम ने क्या कहा । वह न आयेंगे, प्रण करके न आयेंगे ? ऐसा कभी हो सकता है ? कर्तव्य के आगे अपने मान-अपमान को कोई महत्त्व नहीं देते ।

पहला—सुना है, खेलवाड़ा में भी विद्रोह हो गया है । कुमार राघव की मृत्यु के बाद जो ज्वाला धधकी थी वह बुझाये नहीं बुझी । आधी रातोंर सेनाएँ उधर गयी हुई हैं ।

दूसरा—यह और भी अच्छा है । कुछ क्षण में ही पाँसा पलट जायगा । दुर्ग में सेना कम है और जो है वह भी असावधानी

के नशे में चूर है। स्वयं राठौर भारमली के प्रेम में विमुग्ध विलासिता की गहरी नींद सो रहा है। भुस तैयार है, केवल दियासलाई दिखाने की आवश्यकता है, अत्याचार, पाप क्रूरता सब धू-धू करके जल उठेंगे।

पहला—इस नारी का स्वभाव भी विचित्र है। माया की भाँति यदि आज यह एक के घर कृपा करती है तो कल दूसरे के आँगन में छमछमाती है। कुमार जीवित थे तो उन का दम भरती थी और आज उनके हत्यारे का।

दूसरा—मैं तो उसे देवताओं की ओर से भेजा हुआ राठौर का दुर्भाग्य समझता हूँ, जो उसे मृत्यु के ज्वालामुखी पर ला खड़ा कर देगी। सोचो यदि वह न आती तो क्या हम अपने उद्देश्य में सफल हो सकते? क्या सतर्क रणमल की उपस्थिति में हमारी योजनाएँ पूरी हो सकती? भारमली के वेश में राठौर की मृत्यु आयी है। आज वह बेहोश है, यौवन की मदिरा पीकर बेसुध है, उसे क्या मालूम खेत्तवाड़ा में विद्रोह शान्त नहीं हुआ; उसे क्या मालूम उस के कर्मचारी उसके शासन की जड़ें खोखली कर रहे हैं; उसे क्या मालूम उसके सरदार उससे असंतुष्ट होकर उसके राज्य का पाँसा पलट देना चाहते हैं। वह तो मस्त है और तभी जागेगा जब मृत्यु उसका कंधा झुकभोर कर जगायेगी।

पहला—सुनो, सुनो ! यह कैसा शोर मच रहा है।

दोनों सुनते हैं।

पहला—जैसे दूर सागर गरज रहा हो !

दूसरा—जैसे भयानक आँधी चल रही हो ,

दोनों नेपथ्य की ओर देखते हैं ।

पहला—अरे यह तो युद्ध हो रहा है !!

दूसरा—युवराज और सैनिकों के घेरे में राजमाता और महाराणा आ रहे हैं । फाटक खोल दो ! और तलवारें निकाल लो !!

पहला—जय एकलिंग की, जय एकलिंग की ।

फाटक खोलता है ।

‘महाराणा मोकल की जय’, ‘राजमाता की जय’

के सिंहनाद में नंगी तलवारें लिये कुमार

चंड और दूसरे सैनिकों का प्रवेश ।

पहरेदार अभिवादन करते हैं ।

चंड—जाओ, वीरो आज अपने देश को स्वतन्त्र कराने के लिये प्रलय की भाँति राठौर सेना पर टूट पड़ो । नगर के द्वार खोल दो । जहाँ कोई राठौर मिले मृत्यु के घाट उतार दो । सब जगह हमारे आक्रमण का शोर मचा दो । आज अपने प्रिय राघव की मृत्यु का, देश को दासता की बेड़ियों में जकड़ने का, अत्याचार का, सब का खूब बदला लो । महाराणा मोकल की...

सब—(ऊँचे स्वर से) जय ।

चंड—राजमाता की.....

सब—(ऊँचे स्वरसे) जय ।

चंड—मैं महाराणा को सकुशल महलों तक पहुँचा कर आता हूँ । तुम जाओ रणमल को पकड़ लाओ, दूसरे सरदारों को पकड़ लाओ, न पकड़ सको तो उन सबके रक्त से खड्ग भवानी की प्यास बुझा दो ।

प्रस्थान

परदा गिर कर क्षण भर के लिए

फिर उठता है ।

भागते हुए राठौरों और उनका पीछा करते हुए

सिसोदियों का प्रवेश और प्रस्थान

नेपथ्य में मारकाट का शोर

पट-परिवर्तन

रणमल अपने उल्लास भवन में भारमली के हाथ
से मदिरा पीता है ।

रणमल—भारमली !

भारमली—कहो राव !

रणमल—(नशे में) राव नहीं राणा कहो । अब भी केवल
राव ! कहो तो, आज इसी घड़ी चित्तौड़ का राणा हो जाऊँ,
मेवाड़ का महाराणा हो जाऊँ !

प्याला खाली करके भारमली को देता है

भारमली फिर भरती है

रणमल—(मूढ़ों पर ताव देता हुआ) भारमली, तुम रानी
होना चाहती हो, मेवाड़ की महारानी ?

भारमली—(प्याला उसकी ओर बढ़ा कर, कटाक्ष से) कौन स्त्री
महारानी बनने से इनकार कर सकती है राव, धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य
तथा वैभव किसे बुरा लगता है ?

रणमल—(नशे के जोश में) तो प्रण करो भारमली ! यदि मैं
राणा हुआ, तुम मेरी महारानी बनना स्वीकार करोगी ? प्रण करो,
मैं कल ही अपने आपको मेवाड़ का राणा घोषित कर दूँगा ।
आज किस में शक्ति है कि रणमल के सामने खड़ा हो सके,
उसकी आज्ञा का उल्लंघन कर सके । रहा मोकल ! वह तो

मेरे हाथ का खिलौना है । वास्तव में राणा तो मैं ही हूँ ।'

मदिरा पान करता है ।

भारमली—आप पहले महाराणा बन लें । मेरा क्या है ? मैं कहीं दूर तो नहीं ! फिर मेरी इच्छा अनिच्छा का प्रश्न भी कहाँ है ? आप के पास बल है, शक्ति है और मैं ठहरी अबला नारी ।

रणमल—नहीं भारमली, शक्ति से मैं तुम्हारा शरीर बस में कर सकता हूँ, मन नहीं । चाहता हूँ, तुम मन से मेरी बन जाओ ।

भारमली—मन ! मन तो एक विचित्र वस्तु है महाराज !

भारमली प्याला भरती है ।

रणमल—भारमली, पिलाओ । आज दीपमाला के दिन अपने इन कोमल कर-कमलों से जितनी पिला सकती हो, पिलाओ । होश न रहे, ज्ञान न रहे । (हँसता है ।) आज मदिरा में न जाने कैसी मादकता है, कैसी मस्ती है । एक घना अन्धकार मेरे मस्तिष्क पर, मेरी समस्त शक्तियों पर छाया जाता है । अंग-अंग में एक विचित्र स्फूर्ति, एक विचित्र नशा, एक विचित्र सख्खर प्रतीत होता है । तुम्हारे इन हाथों में जादू है भारमली !

भारमली मदिरा का प्याला देती है ।

उठ कर पीता है फिर लेट जाता है ।

रणमल—(अटपटे स्वर में) भारमली, कोई गाना सुनाओ। इस सरूर पर एक और सरूर की तह चढ़ा दो।

भारमली लम्बी साँस लेती है। गाती है, जैसे रणमल को नहीं, अपने मन को सुना रही हो।

तुम को मरने का डर है
मुझ को जीने का खटका
तुम को जीने की धुन है
मुझ को मरने का लटका

रणमल—(नशे में) भारमली, क्या गाने लगी ? मृत्यु का नहीं, जीवन का गीत गाओ, जीवन का !

भारमली नहीं सुनती गाए जाती है।

तुम जीने पर मरते हो
मैं मरने को जीती हूँ
तुम जो हाँसा डुकराते
मैं वह प्याला पीती हूँ

रणमल—(नशे में) प्याला पीती हूँ—वाह ! क्या बात है—लाओ एक और प्याला इधर भी।

भारमली गाते गाते प्याला भर कर देती है।

बाहर युद्ध का शोर मचाई देता है।

तलवारों की भंकार और सैनिकों के गिरने का शब्द
 दरवाजे पर जोर जोर से दस्तक

एक आवाज—महाराज भागिए, महाराज भागिए, दुर्ग पर
 आक्रमण हो गया है ।

भारमली गाना बन्द कर देती है

रणमल—(अर्धनिद्रावस्था में, आँखें बन्द किए हुए मदिरा की एक
 एक घूंट पीता हुआ) भारमली ! बन्द कर दिया, गाओ,
 किसी बात की परवाह नहीं, किसी बात की चिन्ता नहीं,
 तुम गाओ । नगर पर आक्रमण हो, नगर विध्वंस हो जाय,
 तुम गाओ ।

भारमली गाती है ।

तुम मर मर चाहो जीना
 मैं जो जी चाहूँ मरना
 तुम चाहो सुख लेना-ही
 मैं दुख से आँचल भरना

रणमल बेहोश है, भारमली प्याला फेंकती है ।

उसकी पगड़ी से उसे बाँध देती है ।

रणमल एक बार आँखें खोलता है ।

रणमल—भारमली, यह क्या कर रही हो ?

भारमली—(व्यङ्ग से) अपने प्रेमपाश में तुम्हें बाँध रही हूँ
 ताकि कहीं भाग न जाओ

दरवाजा खटखटाने और 'किवाड़ खोलो'

'किवाड़ खोलो' का शोर

एक तलवार किवाड़ चीर कर अन्दर निकल आती है ।

रणमल—प्रेमपाश !

हँसता है, आँखें फिर बन्द कर लेता है ।

कई तलवारें किवाड़ छेदती हैं ।

भारमली—(कमर से छुरा निकालती है) मंडोवर के नारकीय कीड़े, नीच, पापी, नराधम अब तेरा अन्तिम समय है । आज अपने अपमान का, नगर की निर्बोध, निरीह ललनाओं के अपमान का, कुमार राघव के अपमान का, उन की हत्या का, सब का इकट्ठा बदला चुकाऊँगी । प्रतिशोध में जलती हुई मेरे हृदय की ज्वाला आज शान्त हो जायगी ।

किवाड़ तोड़ा जा रहा है ।

—लोगों ने समझा होगा, भारमली नीच गायिका ही निकली । कुमार के मरने पर रणमल के विलास-भवन का खिलौना बनने आ गयी, अपमानित होकर मर नहीं गयी । उन्हें क्या मालूम भारमली मरना चाहती थी, भारमली मर जायगी, किन्तु प्रतिहिंसा की आग ने उसे अब तक मरने न दिया । वह बदला लेकर मरना जानती है । अपमान की ज्वाला को शान्त किये बिना मरना नहीं जानता ।

छुरा चलाती है, हाथ कांप जाता है, रणमल का
 कंधा छलनी होता है। वह तिलमिल कर
 उठता है जोर लगाकर अपनी टाँगों को
 बन्धन-मुक्त कर लेता है। भारमली फिर
 छुरा उठाती है। किवाड़ टूट जाता
 है और नंगी तलवारें लिए
 सैनिक प्रवेश करते हैं।

नायक—कहाँ है पापी अत्याचारी रणमल ?
 रणमल को देखकर तलवार उठाते हैं।

भारमली—ठहरो, मुझे इससे अपने बहुत से अपमानों का
 बदला लेना है।

रणमल एक हाथ खोल लेता है।

नायक—देवि, पुरुषों के होते हुए, स्त्री को खड्ग हाथ में लेने
 की आवश्यकता नहीं। आज राठौर के पाप का अन्त हो जायगा
 और धरती इसके बोझ से हलकी हो जायगी।

रणमल स्वतन्त्र हो जाता है, कमरे में रखा
 पीतल का कलश उठाता है और भारमली पर
 वार करता है। वह झुक जाती है, गिर पड़ती है।
 वही कलश वह नायक पर पूरे जोर से मारता है
 वह अचेत होकर गिरता है। एक हाथ से उसकी
 तलवार छीनकर दूसरे में पकड़े हुए कलश से
 अन्य सैनिकों के वारों को रोक कर वह लड़ता
 लड़ता बाहर चला जाता है।

भारमली—(धीरे धीरे उठती है, नेपथ्य की ओर देखती है, चौंकती है, जल्दी से छुरा उठाती है ।) तुम भागना चाहते हो, तुम भारमली के रहते भाग जाओगे !

पूरे जोर से छुरा फेंकती है, किसी के गिरने की आवाज़

‘महाराणा की जय’ ‘राजमाता की जय’ के नारे

पट-परिवर्तन

कुछ सैनिक धरती पर रणमल के रक्त-रंजित मृत
शरीर को घेरे खड़े हैं ।

हरिसिंह तलवार खींचे प्रवेश करता है ।

हरिसिंह—कहाँ है वह निर्दयी, क्रूर राठौर ? आज मेरी
खड्ग अपने स्वामी की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए तड़प
रही है ।

सैनिक आगे से हट जाते हैं ।

—मर गया ? (निराशा से) इतनी दूर से बिना सुस्ताए,
बिना आराम किये, प्रतिहिंसा के परोँ पर उड़ते हुए, आना वृथा
हुआ । प्रण किया था कुमार राघव की मृत्यु का बदला लूँगा ।
भगवान ने इसके पापों का प्याला पहले ही छलका दिया, इस
पापी के रक्त से मेरी खड्ग को अपवित्र होने से बचा लिया ।

सैनिकों के साथ चंड का प्रवेश

‘राजमाता की जय’ ‘कुमार चंड की जय’ का शोर

चंड—(रणमल के शव की ओर देख कर) किस वीर की खड्ग
ने इस पापी को मृत्यु का जाम पिलाया, किस बहादुर की तेग ने
मेवाड़ के अपमान का बदला चुकाया—मैं उसे पुरस्कार दूँगा ।

सब चुप रहते हैं ।

चंड—(आश्चर्य से उनकी ओर देख कर) आप में से किस ने.....

एक सैनिक—महाराज ! रणमल हमारे चार सैनिकों को मार कर निकल ही भागा था कि.....

चंड—तुम्हारी तलवार ने उसके पाप का अन्त कर दिया !

वही सैनिक—नहीं महाराज !

चंड—[बेताबी से] तो किस ने.....

वही सैनिक—भारमली के छुरे ने उसका काम तमाम कर दिया ।

चंड—भारमली के छुरे ने ! कहाँ है भारमली ?

दो सेवक घायल भारमली को उठाये प्रवेश करते हैं

और फर्श पर लिया देते हैं ।

चंड—यह कैसे घायल हुई ।

एक सेवक—इन्होंने आत्म-हत्या कर ली । जब हम (रणमल की ओर इशारा करके) इस के कमरे में गये तो इन्हें रक्त में लथपथ पड़े पाया ।

वही सैनिक—जब हम रणमल की खोज करते आसे थे तो कमरे के किवाड़ बन्द थे । जब हम ने उन्हें तोड़ डाला, तो देखा कि यह चारपाई से बँधा पड़ा है और भारमली छुरा ताने खड़ी है । हमने भारमली को धुँ कर देने से रोका । इस बीच

में रणमल स्वतन्त्र हो गया। खूब लड़ाई हुई, जान बचाने के लिए वह जी तोड़कर लड़ा, हमारे कुछ सैनिक भी मारे गए और मेरी खड्ग उसे धराशायी करने ही वाली थी, कि भारमली ने छुरा तान मारा जिस से वह गिर पड़ा। फिर यह आयी और छुरा खेंच कर ले गई, शायद उसी से इस ने अपनी हत्या कर ली।

भारमली आँखें खोल कर फटी-फटी
दृष्टि से देखती है।

चंड—भारमली !

भारमली—(छत की ओर देखते हुए, क्षीण आवाज़ में) मैं राघव के पास जा रही हूँ।

चंड—भारमली !

भारमली—(उखड़े स्वर से) मुझे खेलवाड़ा में लेजाकर जलाना।

आँखें बन्द हो जाती हैं।

चंड—(लम्बी साँस लेकर) भारमली देवी थी, मेवाड़ की वीर रमणी थी ! गायिका ही नहीं थी, हीन ही नहीं थी, उपेक्षा के योग्य ही नहीं थी ! (फिर दीर्घ निश्वास छोड़ते हैं।) इस शव को खेलवाड़ा पहुँचा दिया जाय और इसकी इच्छा के अनुसार ही इसका अन्तिम संस्कार किया जाय।

हरिसिंह—(रणमल के शव की ओर सञ्केत करके) और इसके साथ क्या व्यवहार किया जाय। ऐसे पापी का सिर काट कर दुर्ग के मीनार पर लटकाना चाहिए और शरीर चील और कौओं का भोज बनने के लिये फेंक देना चाहिए।

चंड—हाँ, इम कृनन्न का सिर काट लो और उसे दुर्ग के मीनार पर.....

तेजी से हंसाबाई का प्रवेश

हंसाबाई—नहीं सिर न काटो, मारो नहीं। इसे छोड़ दो, मेरे इस निष्ठुर भाई को छोड़ दो।

रणमल के मृत शरीर को देखकर

—हाय, मार दिया, मेरे भाई को मार दिया, किसने यह हत्या की। (चंड की ओर देखकर) तुम ने इसे मारा, तुम ने मेरे भाई के छुरा भोंका। अचक्का हुआ, मैंने जो तुम्हारा अरमान किया था, तुम ने उसका बदला ले लिया। बहिन को भाई से सदा के लिए अलग कर दिया।

चंड—माँ, माँ !

हंसाबाई—वह मूर्ख था, कृनन्न था किन्तु फिर भी मेरा भाई था, मैंने उस से सगे भाइयों से अधिक प्रेम किया था, मैं उसे केवल दंड देना चाहती थी, मारना न चाहती थी। किन्तु तुम—चलो तुम्हारे मार्ग से यह काँटा भी निकल गया।

चंड—माँ ! यह सेवक की सहन-शक्ति से बाहर है, तुम ने

बुलाया, मैं चला आया, तुम धक्के देती हो मैं चला जाऊँगा ।

तेजी से प्रस्थान

हरिसिंह—कुमार, कुमार.....ठहरो मैं भी आया ।

प्रस्थान

हंसाबाई—(जैसे चौंक कर दो पग बढ़कर,) चंड ! चंड !!
.....चला गया । आह ! मैं अपने आप में नहीं हूँ !

शव की ओर देखकर, रोते हुए

—तुम मेरे भाई थे, शत्रु ही सही, मेरे बच्चे से विद्वेष रखने वाले ही सही, मेरी माँ और भाई के घातक ही सही, फिर भी मेरे भाई थे, मेरे साथ बचपन में खेले थे, मेरे पितृ-कुल के अन्तिम दीप थे । तुम ने कभी न जाना, तुम्हारी इस सौतेली बहिन के हृदय में तुम्हारे लिए कितना स्नेह है, उसका हृदय किस तरह फटा पड़ता है !

पछाड़ खाकर शव पर गिर पड़ती है ।

पट-परिवर्तन

चित्तौड़ का एक मार्ग

सामने शिव का विशाल मन्दिर दीपमाला की

रोशनी से जगमगा रहा है

अन्दर से गाने की धीमी धीमी ध्वनि आ रही है

हे शिव हे शंकर हे ईश

जय जय जय जय जय लकुटीश

कुमार चंड और उनके पीछे पीछे हरिसिंह का प्रवेश

गाने की ध्वनि जारी रहती है ।

युग युग जिँएँ हमारे चंड

पापी पाएँ भारी दंड

फिर हो सुख का राज अखंड

सब गुण गाएँ तेरे ईश

जय जय जय जय.....

हरिसिंह—(निश्वास छोड़ कर, जैसे अपने आप) सारा मेवाड़ आज अपने रक्षक की प्रशंसा के गीत गा रहा है, दासता की बेड़ियों से मुक्त होकर, स्वतन्त्र होकर सुख मना रहा है ? और उसका वह रक्षक, उसकी बेड़ियों को काटने वाला उसे त्याग कर जा रहा है ।

चंड—(चलते चलते रुक कर) हरिसिंह !.....

.....मनुष्य का कर्तव्य काम करना है, उसके फल की इच्छा करना नहीं ।

हरिसिंह—किन्तु महाराज ! ये आप को छोड़ेंगे नहीं, ये मेवाड़ वासी आप के मेवाड़-त्याग की बात सुन कर फिर आप को ले आयेंगे ।

कुमार चुप रहते हैं ।

हरिसिंह—मैं कहता हूँ महाराज ! स्वयं राजमाता आप से आने का अनुरोध करेंगी, महाराणा आप को लेने जायेंगे, मेवाड़ वासी आप के पाँव पड़ेगे । मैं भविष्यवाणी करता हूँ—आप को लौटना होगा ।

चंड—(शून्य में देखते हुए) राजमाता कहती हैं—मैंने रणमल को मरवा दिया, मैं उसे पथ का काँटा समझता था, मैं अपने अपमान का बदला लेना चाहता था ।

हरिसिंह—इस समय महाराज ! उनकी आँखों पर अपने भाई की मृत्यु के दुख का परदा छाया हुआ है, ज्यों ही वह हट जायगा, वे आयेंगी, मैं कहता हूँ आप आज की रात रुक जाइए ।

चंड—भविष्य की बातों को सोचने से क्या लाभ, हरिसिंह ? मनुष्य को अपनी आँखें सदैव वर्तमान पर ही रखनी चाहिए ।

चल पड़ते हैं ।

हरिसिंह—(पीछे चलता हुआ) महाराज, रात को कहाँ जायेंगे ?

चंड—मेरे लिए अब रात दिन एक समान हैं ।

हरिसिंह—रास्ता ऊबड़-खाबड़ है महाराज !

चंड—रास्तों का ज्ञान रखना मैंने कब का छोड़ दिया है ।

प्रस्थान

हरिसिंह—महाराज !.....महाराज !!

प्रस्थान

पटाक्षेप

